वही शहर वही लोग और किस्सों की तीसरी किस्त

राजेश जोशी

किस्सों में कोई सिलसिला नहीं होता। आगे का किस्सा पीछे और पीछे का किस्सा आगे सुनाया जा सकता है। वक्त के साथ साथ किस्सेबाज बदल जाते हैं और किस्सा सुनने वाले भी। और जब किस्सेबाज बदलते हैं और किस्सा सुनने वाले तो पुराने किस्से भी नये हो जाते हैं।

नानियों दादियों की तरह हमारी इस बूढ़ी धरती को भी किस्से गढ़ने और सुनाने में महारत हासिल होगी और उसके पास अनगिनत किस्सों का खजाना होगा तभी न, युगों से यह चांद हमेशा उसी के इर्द गिर्द मंडराता रहता है।

गप्पी की डायरी का एक पन्ना ,
कहानी और दुख और सुख के बारे
में कुछ सूत्र ।

दुख और सुख का अनुपात घटनाओं से दूरी और निकटता के हिसाब से बदलता रहता है। कुछ दूर निकल आने पर दुखदायी किस्से भी मजेदार लगने लगते हैं। कभी कभी तो जिसकी मृत्यु पर हम आठ आठ आंसू रोये थे, समय बीत जाने पर हंस हंस कर उसके किस्से सुनाने लगते हैं। जीवन और किस्सों में न तो दुखांत होता है न सुखांत। जीवन के नाटक में कई बार लगता है कि ये दोनों एक दूसरे की प्रॉम्पटिंग करते रहते हैं और कभी कभी प्रॉक्सी भी।

बहुत चुप रहने वाले को बहुत बोलने वाला पसंद नहीं आता और बहुत बकबक करने वाले को चुप चुप रहने वाला मनहूस लगता है। कभी कभी मुझे लगता है कि ऐसे दो लोगों को अगर एक दूसरे के साथ छोड़ दिया जाय तो एक अलग तरह की कहानी पैदा हो सकती है। एक अलग तरह की कहानी लिखने के कई तरीकों में से एक तरीका शायद यह भी हो सकता है कि कहानी वहां से शुरू की जाय जहां उसे खत्म करने के बारे में सोचा गया हो। या कहीं अधबीच से कोई सिरा पकड़ कर अचानक ही कहानी शुरू कर दी जाय। अक्सर जिन्दा कहानियां हमारे आसपास घूमती रहती हैं। जबरन आकर हमसे टकराती हैं। बीच में ठसने की कोशिश करती हैं। अच्छा हुआ डुग्गी के पल्ले कभी ऐसी कोई कहानी नहीं पड़ी, वरना कहता – कपड़े न लत्ते, बीच में बैठेंगे! एक बार तो एक कहानी मुझसे मेरा ही पता पूछने लगी। मैंने समझाने की कोशिश की कि वह व्यक्ति मैं ही हूं लेकिन उसने मानने से इन्कार कर दिया। मुझे गुस्सा आ गया तो मैंने उसे कह दिया कि ठीक है... तुम खुद जाकर ढूंढ लो। दूसरे दिन जब मैं उस कहानी को ढूंढने निकला तो वह मेरे हाथ नहीं आयी। यही होता है, जैसे ही हम उन्हें पकड़ने का मन बनाते हैं वे हमें गच्चा देकर निकल जाती हैं और हाथ नहीं आतीं... इसी

www.tadbhav.com

चक्कर में परेशान होकर एक दिन मैंने तय कर लिया कि अब कहानी नहीं लिखूंगा।

गप्पी की डायरी के कुछ और पन्ने ।
सब्जी मंडी की हसीन कुंजड़नें और भोला बाबा ।
और तरह तरह के पागलों की दास्तान ।

(गप्पी की डायरी के इस पन्ने के एक सिरे पर एक पंक्ति लिखी हुई थी कि मैं उस शहर में रहना नहीं चाहता जहां के लोग अपने पागलों से प्यार नहीं करते।)

बिल्लू मेरे मन का एक ऐसा कोना था जिसमें बार बार झांकने की इच्छा होती और झांकने से डर भी लगता। बिल्लू भैया से मुझे बहुत प्यार था। भुआ कभी कभी बिल्लू भैया और मेरे बचपन के किस्से सुनातीं तो मैं झेंप सा जाता। बिल्लू मेरी भुआ के लड़के थे। वह मुझसे तीन साल छोटे थे। अपने भाई बहनों में वह चौथे थे और मैं अपने भाई बहनों में पांचवां। भुआ कहतीं बचपन में बिल्लू भैया को जिस पलने में सुलाया जाता मैं उस पलने के नीचे जाकर सो जाता। कभी कभी तो भुआ एक रुमाल रख कर कह देतीं कि यहां बिल्लू भैया सो रहे हैं तो मैं वहीं उसी के बगल में जाकर चुपचाप सो जाता। बिल्लू भैया खूब गोरे और सुंदर थे। बचपन में बिल्लू भैया को नींद नहीं आती और वह रात रात भर रोते रहते। उन्हें मारफीन का इंजेक्शन दिया जाता। तब कहीं वह सो पाते। कहा जाता था कि मारफीन की मात्रा ज्यादा हो जाने की वजह से ही उनका दिमाग ठीक से विकसित नहीं हो पाया था। वह अक्सर चुपचाप रहते। एक निर्लिप्त संत। पर कभी कभी गुस्से में आ जाते तो किसी को भी लबूर लेते। उनका एक ही शौक था रेडियो। वह दिन भर रेडियो सुनते रहते। बिनाका गीतमाला में कौन सा गाना कब किस पायदान पर था वह बिना देर किये बता देते। जब वह हमारे घर में होते रेडियो पर उन्हीं का कब्जा रहता। पिता जी का भी बस उनके रहते नहीं चलता था। भुआ पिता जी से छोटी थीं पर जब वह होतीं तो घर में उन्हीं की चलती थी। बिल्लू भैया को डेजी रानी से प्रेम था। डेजी रानी उस दौर की एक बहुत अच्छी बाल कलाकार थीं। जब भी बिल्लू भैया से पूछा जाता कि वह किससे शादी करेंगे तो वह तत्काल कहते डेजी रानी से। बिल्लू भैया कितने ही गुस्से में हों डेजी रानी का नाम लेते ही शांत हो जाते। उनकी याददाश्त कमाल की थी। उन्हें सबके जन्मदिन याद थे। पता नहीं कितने साल पहले कभी मैंने लल्ली से कहा था कि लल्ली बिल्लू की चुगली मत करना। लल्ली बिल्लू से छोटी बहन थी। यह वाक्य उन्हें हमेशा याद रहता। जब भी वह मुझसे मिलते इस वाक्य को दोहराना नहीं भूलते...। बिल्लू भैया पूरी तरह पागल नहीं थे। मेरे बचपन में इस तरह दो पागल थे एक नाना के पिता – बा साहब और दूसरे बिल्लू भैया। पागलों के बारे में सोचते हुए मैं कभी इन दोनों को अलग करके नहीं सोच पाता।

शहर में किस्म किस्म के पागल थे। भिखारी थे। नामी दादा थे। भोला बाबा का दिन तय था और समय भी। शुक्रवार की शाम पांच और छः के बीच भोला बाबा की गरजती हुई आवाज हमारे मोहल्ले में सुनायी पड़ती। वह एक पहलवाननुमा व्यक्ति थे। नाटा कद और बहुत गठीला बदन। भगवा रंग की तहमत और भगवा रंग की ही गंजी पहनते। सिर लगभग घुटा हुआ या बहुत छोटे बाल, जैसे सिर घुटाने के बाद हफ्ते भर में उग आते हैं। उनके हाथ में एक लम्बा सा चिमटा रहता। वह आते और आशिकअली मक्खन वाले की दुकान के सामने खड़े होकर पहले जोर से चिमटा बजाते और फिर अपनी बुलंद आवाज में अपना नारा लगाते... पठान की खैर... गद्दार की मां का भोसड़ा...। पहला वाक्य रबर की तरह दूर तक तनता और दूसरा जैसे रबर को अचानक छोड़ दिया गया हो, चटाक से कान पर गिरता। उनकी आवाज इतनी बुलंद और गरजदार थी कि पूरा मेहल्ला उनकी आवाज से गूंज जाता। दुकान से कोई कुछ पैसे भोला बाबा की हथेली पर रख देता। वह बिना रुके आगे बढ़ जाते।

www.tadbhav.com

चौराहे पर आकर वह अनिवार्य रूप से रुकते। एक बार फिर अपना चिमटा बजाते और अपना नारा बुलंद करते। सब उन्हें जानते थे। वह अकड़ू किस्म के गुस्सैल से दिखते शख्स थे। विनम्रता की एक झांई भी उनके व्यक्तित्व में नहीं थी। उनके इश्क के कई किस्से थे। सब्जीमंडी की एक बहुत खूबसूरत कुंजड़न से भोला बाबा का इश्क चलता था। सब्जीमंडी में कई कुंजड़नें बहुत खूबसूरत थीं। कुछ लोग तो उन्हीं की वजह से नियमित रूप से सब्जी खरीदने आते थे। कई दुकानदार और नौकरीपेशा लोग भी गाहे बगाहे यहां आंखमटक्का करते देखे जाते। कुंजड़नों की खूबसूरती के बारे में शहर के मनचलों के बीच अक्सर ही बातें होती रहतीं। दोपहर में जब सब्जीमंडी में ग्राहकों का आना जाना काफी कम हो जाता तो शहर के सारे मनचले लफंगे सब्जीमंडी में मंडराने लगते। कुंजड़नों और मनचले लफंगों के बीच कभी धीमे धीमे कभी जोर जोर से जुमलों का आदान प्रदान होता रहता। कुछ द्विअर्थी और कुछ उत्तेजक संवादों का यह नाटक रुक रुक कर सारी दोपहर अनवरत रूप से हर रोज चलता। भोला बाबा भी अपनी नियमित फेरी से लौट कर दोपहर तक सब्जीमंडी पहुंच जाते। अक्सर रात को जब तक सब्जीमंडी बंद नहीं होती वह यहीं पाये जाते। एक दोपहर की बात है, भोला बाबा जब शहर का चक्कर लगा कर अपनी कुंजड़न की दुकान के पास पहुंचे तो देखा कि एक मनचला उसके बगल में खड़ा कुछ फुसफुसा रहा है। कुंजड़न कभी हंस कर और कभी गुस्से में उसे गालियां बक रही थी। कुंजड़न के घेरदार लंहगे में एक छेद था। मनचले ने उंगली से उस ओर इशारा करके पूछा – क्यों यह रास्ता कहां जाता है? कुंजड़न ने अपनी छड़ी उठायी ही थी कि भोला बाबा ने गरज कर दूर से कहा – उससे क्या पूछता है, इससे पूछ जो रोज आता जाता है। भोला बाबा की गिनती न तो पागलों में हो सकती थी, न भिखारियों में और न दादा लोगों में। वह शहर की नौटंकी के एक अलग ही चरित्र थे।

हर शहर के पास अपने पागलों के सौ पचास किस्से होते हैं। हमारे शहर के पास भी अपने कई पागलों की स्मृतियां थीं। किसी शहर के पास अगर अपने पागलों की स्मृतियां नहीं हों तो उस शहर और उस शहर के बाशिंदों पर शक करना चाहिए। मैं ऐसे शहर में कभी नहीं रहना चाहूंगा जो अपने पागलों से प्यार नहीं करता। हमारी निर्धनता ने भी हम पर कई उपकार किये थे, उनमें से एक उपकार यह भी था कि उसने हमारे पागलों को बहुत समय तक हमसे अलग नहीं किया। हमारे शहरों में न तो मनोचिकित्सा के लिए बहुत अच्छी व्यवस्थाएं थीं और ना ही आसपास में ज्यादा पागलखाने थे। इसलिए पागल शहर में ही घूमते रहते थे। उनकी देख रेख बहुत खर्चीली नहीं थी। मुझे लगता है व्यवहारिक लोग पागलों के बनिस्बत कम विश्वसनीय होते हैं। किसी भी शहर के पागल उस शहर की विश्वसनीयता और व्यावहारिकता के बीच संतुलन बनाये रहते हैं।

इधर शहर की गलियों, सड़कों या चौराहों पर पागल कम नजर आने लगे हैं। मुझे यह बात बहुत डरावनी लगती है। शक होता है। क्या यह शहर अविश्वसनीय हो रहा है? कुछ न कुछ गड़बड जरूर है। पुराने शहर की तरह यह उतना अपना सा नहीं लगता। इसकी गलियों चौराहों पर अब एक भी पागल नजर नहीं आता। पागलों के पास सुस्ताने के जितने भी सूने कोने थे उन सब पर अब दुकानें उग आयी हैं। बाजार के पागलपन ने असल पागलों की सारी जगहों को हथिया लिया है। यह पागलपन उस पागलपन से ज्यादा खतरनाक है। अब कहीं से किसी पागल के गालियां बकने की आवाजें नहीं आतीं। उन दिनों स्कूल... या कालेज आते जाते कितने ही पागल थे जो सड़कों पर भटकते नजर आते थे। कोई पागल मस्जिद की सीढ़ियों पर दिख जाता तो कोई मस्जिद के सामने वाले पीपल के नीचे बने चबूतरे पर। पागलों और समाज के लोगों के बीच सारे सम्बंध पूरी तरह टूटे नहीं थे। सामान्य लोग इतने यांत्रिक नहीं हुए थे कि पागलों को शहर से बाहर निकालने की मांग करने लगें। लोग पागलों को तंग भी करते और प्यार भी। पागल, लोगों की फुरसत के पलों का मनोरंजन थे। इस मनोरंजन से पागलों और शहर के बीच एक रिश्ता बना रहता था। मजे लेने में थोड़ी हिंसा थी, पर जैसे ही इस हिंसा का प्रतिशत गड़बड़ाता तो लोगों के मन में एक अपराधबोध कुलबुलाने लगता और वह पागलों

www.tadbhav.com

के लिए कुछ न कुछ करने को दौड़ पड़ते। कोई कपड़े ले आता तो कोई खाना। उनके खाने पीने का ख्याल रखा जाता। किसी पागल को चाय पीना हो या कुछ खाना हो तो कोई दुकानदार इन्कार नहीं करता। पागलों के तरह तरह के किस्से मशहूर थे। सारे पागल एक जैसे नहीं थे। कुछ ज्यादा पागल थे कुछ कम पागल और कुछ अधपगले थे। अधपगले चिढ़ाने पर ही लोगों के पीछे भागते या गालियां बकते थे। लड़के जब किसी पागल को ज्यादा तंग करते तो बड़े बूढ़ों में से आकर कोई न कोई लड़कों को डांट देता। लड़के इधर उधर हो जाते। थका हुआ पागल फिर कुछ देर सुस्ता लेता। हर पागल का एक नाम था। जो शायद उसकी चिढ़ाउनी से बनाया गया था। पागलों के असल नाम किसी को पता नहीं थे। किसी किसी का नाम पता भी था तो अब उस नाम का उस पागल के लिए कोई मतलब नहीं रह गया था। सारे पागल अपने असली नाम भूल चुके थे। जैसे उनके लिए अपना नाम ही नहीं शायद यह दुनिया भी अर्थहीन हो चुकी थी। अर्थ और अर्थहीनता के बीच शायद कोई तीसरी ही स्थिति होगी, कोई गोधूलि बेला। पागल के भीतर झांक सकने की कोई खिड़की नहीं थी। मामा भिंड़ी, दादा तामलोट, दादा खैरियत, अंडे चोर और नेहरू जी की अम्मा जैसे नाम से ही अब वे जाने जाते थे। सबकी अपनी अलग पहचान थी। दादा खैरियत हमेशा सिर झुका कर चलते थे। शहर के विशाल दरवाजों के नीचे से निकलते तो सिर थोड़ा और झुका लेते जैसे दरवाजा किसी भी वक्त उनके सिर से टकरा जायेगा। कोई शरारती लड़का दबे पांव पीछे पीछे जाता और सिर पर एक हल्की सी चपत लगा देता। दादा खैरियत को लगता कि शायद दरवाजा उनके सिर से टकरा गया है इसलिए वे कुछ और झुक जाते। वे दादा खैरियत... की आवाज कसने पर गालियां बकते और कभी कभी जब लड़के उन्हें ज्यादा तंग करते तो उन्हें मारने को दौड़ते।

किसी दिन कोई पागल अपने आने के समय पर बाजार में नहीं दिखता तो लोगों को उसकी फिक्र हो जाती। लोग एक दूसरे से पूछते, कहीं उसे कुछ हो हवा तो नहीं गया। शाम जैसे जैसे घिरने लगती और सट्टा खेलने का समय होता तो ओपन टू क्लोज के नम्बर लगाने वाले पागलों के आसपास मंडराने लगते। यहां वहां रम्मूछ ढूंढने के अलावा, सट्टा लगाने वाले पागलों के बगल में जाकर बैठ जाते, उन्हें चाय पिलाते, नाश्ता कराते। पुटियाने की कोशिश करते। पागल कोई नम्बर बोल देता तो ठीक वरना उसकी हरकतों से नम्बर का अनुमान लगाया जाता। एक उंगली उठा दी तो एक, दो उठा दीं तो दो। घूंसा दिखा दिया तो पांच। तरह तरह के टोटके थे। कुछ पागल लोगों की हरकतों को भांप जाते, तो तरह तरह के नखरे भी करते। किसी पागल का बताया नम्बर फंस जाता तो कुछ दिन के लिए उस पागल की हैसियत बढ़ जाती। सट्टा खेलने वालों के लिए पागलों और पीरों में कोई खास फर्क नहीं था।

एक पढ़ा लिखा पागल था। उसके एक हाथ में अंग्रेजी की मोटी सी किताब खुली रहती और बगल में या दूसरे हाथ में एक छोटा सा बेंत होता। वह कभी किसी चौराहे पर या सड़क के किनारे खड़ा रहता। अक्सर वह हमारे घर के सामने ही नजर आता। जब खड़े खड़े थक जाता तो मक्खनवाले की दुकान के पटिये पर कुछ देर बैठ जाता। आशिक अली मक्खनवाले की तीन या चार बीवियां थीं और करीब दस बारह बच्चे थे। बच्चों को पढ़ाने के लिए या कभी कोई गलती करने पर आशिक अली अपने बच्चों को बहुत बुरी तरह पीटा करते थे। यह पागल बीच बीच में किताब में कुछ पढ़ने की कोशिश करता फिर अचानक ऊपर आसमान की तरफ देख कर कुछ मुंह ही मुंह में बोलने लगता। कभी अपनी बेंत को हवा में तान कर आसमान पर कुछ लिखने लगता। उसका नाम मैं भूल गया हूं पर उसका सरनेम सक्सेना था। कभी वह बहुत पढ़ाकू लड़का था। नवाब हमीदुल्ला खां ने दो छात्रों को एक साथ इंग्लैण्ड पढ़ने भेजा था – एक शंकरदयाल शर्मा और दूसरा था सक्सेना। अमूमन उसे कोई चिढ़ाता या तंग नहीं करता था। वह सुबह जब बाजार में आता तो साफ सुथरे कपड़े पहने होता। कमीज पैण्ट में खुंसी होती। बेल्ट बंधी होती और जूते हमेशा पालिश किये हुए होते। उसके घरवाले

www.tadbhav.com

उसे पूरी तरह तैयार करके ही घर से बाहर भेजते थे। बालों में कंघी की होती और उसकी खूबसूरत दाढ़ी काफी तराशी हुई होती थी। वह किसी से कभी कोई बात नहीं करता था। कुछ लोग कहते थे कि वह भोपाल की एक प्रसिद्ध गायिका के इश्क में पागल हो गया था। वह उसका नाम लेकर कभी कभी गालियां भी बकता था। सक्सेना के पागल होने का दूसरा किस्सा ही लेकिन ज्यादा विश्वसनीय माना जाता था। कहते हैं सक्सेना बेहद पढ़ाकू था और कुछ ज्यादा ही सेन्सेटिव भी। किस्सा उन दिनों का है जब वह इंग्लैण्ड में था। दूसरे दिन परीक्षा थी। सक्सेना अपने हॉस्टल के कमरे में पढ़ रहा था। रात ज्यादा हो चुकी थी। तभी वार्डन ने उसके कमरे का दरवाजा खटखटाया और कहा कि रात ज्यादा हो चुकी है, बिजली बंद करो और सो जाओ। सक्सेना ने बिजली बंद कर दी पर वह सो नहीं सका, उसे लगा कि कल की परीक्षा में वह प्रथम नहीं आ पायेगा। जीवन में उसने प्रथम के अलावा कभी कोई श्रेणी जानी ही नहीं थी। फिर जाने क्या हुआ... कहते हैं परीक्षा केन्द्र से वह बाहर निकल आया। इक्जैमिनर उसे आवाज लगाता रहा पर वह किसी और दुनिया में पहुंच चुका था। वह अपना नाम पता सब कुछ भूल चुका था। सक्सेना को वापस भोपाल भेज दिया गया। जानने वाले कहते कि वह जीनियस था...। उन दिनों जीनियस को थोड़ा थोड़ा पागल माना जाता था। इस धारणा के चलते कई पागलों को भी जीनियस कहा जाता था। पागलपन क्या होता है यह कोई नहीं जानता था।

यूं तो किसी में किसी भी किस्म का अतिरेक हो तो उसे पागल कह देने का चलन था। लेकिन इस तरह पागल कहे जाने का मतलब पागल होना नहीं था। मेरे एक मित्र कहते कि लेखक में भी एक किस्म का पागलपन होता है। बिना पागल हुए आप लेखक नहीं हो सकते। तो क्या हर रचना वास्तव में एक सजग पागलपन का उत्पाद है? पागलपन व्यावहारिकता का प्रत्याख्यान है।

(डायरी समाप्त)

जामा मस्जिद की गुलाबी सीढ़ियां।
लक्का कबूतर। लड़ना चुनाव
चा हुसैन का और लुकमान अली की याद।

चा हुसैन पूरी तरह पागल नहीं थे। बस जब कोई उन्हें चा हुसैन भाडू कहता तो वे गालियां बकते और जब कोई ज्यादा तंग करता तो उसके पीछे दौड़ने लगते। गप्पी, मैं और दूसरे दोस्त अक्सर जामा मस्जिद की सर्राफे की तरफ वाली सीढ़ियों पर बैठते थे। ये खुरदुरे पत्थरों की सीढ़ियां थीं। सर्राफे के एक कोने पर बिन्दा घायल की दुकान थी। दुकान खाली रहती थी। इसमें सिर्फ गद्दे और उन पर सफेद चादरें बिछी रहतीं और सफेद गिलाफ चढ़े लोड रखे रहते। बिन्दा घायल जब फुरसत में होते तो यहां आकर बैठते। वह अधेड़ उम्र के पश्ताकद, दुबले पतले आदमी थे। कलफ लगा सफेद कुर्ता, धोती और हमेशा सफेद टोपी लगाये रहते। उन्होंने ब्याह नहीं किया था। सोने चांदी की दलाली और कभी कभी मकान और जमीन की दलाली का काम करते थे। फुरसत में होते तो लड़कियों की बात करते ही उनके मुंह में पानी भर आता और लार चूने लगती। शहर की ऐसी तमाम स्त्रियों की जानकारी उन्हें थी, जिन्हें चालू समझा जाता था। उनके पास अनेक स्त्रियों के गुप्त किस्सों का खजाना था, जिसे वह रस ले लेकर सुनाया करते। स्त्रियों में खासतौर पर चालू किस्म की स्त्रियों और वेश्याओं में उनकी रुचि तो थी पर सर्राफे के एक इज्जतदार व्यापारी होने के कारण वे डरपोक भी बहुत थे। जो लोग उनकी इस कमजोरी को जानते थे उनको मूंडते रहते। बिन्दा घायल के सीने में न जाने कितनी स्त्रियों के नैनबाण बिंधे हुए थे।

चा हुसैन जामा मस्जिद की मुख्य सीढ़ियों के सामने मावे की डलिया लेकर बैठते। जामा मस्जिद की मुख्य सीढ़ियां गुलाबी रंग के मोजेक से बनी थीं। गुलाबी रंग का ताल्लुक सिर्फ गुलाबी

www.tadbhav.com

शहर जयपुर से ही नहीं था। नवाब शाहजहां बेगम ने निशात अफजा बाग बनवाया था और उसके स्थापना दिवस को गुलाबी जश्न की तरह मनाया गया था। इस उत्सव में आने वालों के लिए जरूरी शर्त थी कि वे गुलाबी पोशाक पहन कर ही इस जश्न में शामिल हो सकते थे। सारा माहौल गुलाबी था। स्त्रियां, पुरुष, नौकर चाकर और दरबारी भी गुलाबी पोशाक में थे। मस्जिद की मुख्य सीढ़ियां इब्राहीमपुरे की तरफ खुलती थीं। विभाजन के पहले तक इब्राहीमपुरे में ज्यादातर दुकानें मुसलमान व्यापारियों की थीं। शहर के दो सबसे अच्छे माने जाने वाले चायघर अहद होटल और युसुफ होटल भी इब्राहीमपुरे में ही थे। अहद होटल ही इस शहर का काफी हाउस था। उसमें एक बालकनी थी, जिसमें बेल्जियम के कट ग्लास लगे हुए थे। बाल्कनी के पीछे बने कैबिनों में शहर के दादा किस्म के लोगों की बैठक थी और नीचे के हाल में उर्दू हिन्दी के लेखक पत्रकार और सियासी पार्टियों के नेता लोग बैठा करते थे। मुक्तिबोध और परसाई भी जब भोपाल आते तो मथुरा बाबू, अक्षयकुमार, मदन तापड़िया आदि के साथ यहीं उनकी बैठकी जमती। ताज भोपाली उन दिनों यहां मैनेजर होते थे। वह मैनेजर कम थे शायर ज्यादा। कहते हैं फतह बीवी की कोई औलाद नहीं थी इसलिए उन्होंने एक हिन्दू बच्चे को गोद ले लिया था। बड़े होकर यह लड़का मुसलमान हो गया और इसका नाम रखा गया – इब्राहीम। जब सरदार दोस्त मोहम्मद खां को गुजरात में कैद कर लिया गया तो फतह बीबी ने इसी इब्राहीम के जरिये रकम भेज कर दोस्त मोहम्मद को छुड़वाया था। यह मोहल्ला उसी इब्राहीम के नाम पर इब्राहीमपुरा कहलाता था। इब्राहीमपुरे वाली मस्जिद में ही उसकी कब्र थी।

जामा मस्जिद चौक के बीचोंबीच थी और शहर के बीचोंबीच भी। यह शहर का केन्द्र था। जामा मस्जिद के गुम्बद हमेशा ही कबूतरों से भरे रहते। जामा मस्जिद और मोती मस्जिद में हजारों कबूतर पले हुए थे। शतरंज और हाकी के अलावा कबूतरबाजी भोपालियों का तीसरा शगल था। कई घरों पर कबूतरों के बैठने के लिए छतरियां लगी नजर आती थीं। छतरी पर आकर दूसरे का कबूतर बैठा नहीं कि उसे फंसाने के लिए लगी रस्सी तत्काल खींच ली जाती। कबूतर फंसाने को लेकर कई बार आपस में झगड़ों की नौबत आ जाती। कबूतरों की कई प्रजातियां थीं। पर लक्का कबूतर की बात ही अलग थी। उसकी अकड़ भोपालियों को बहुत पसंद थी। लक्का कबूतर अकड़ कर अपनी गरदन घुमाता तो उसके मालिक की गरदन में भी अकड़ आ जाती। लक्का कबूतर की अकड़ के चलते यहां मुहावरा चल निकला था कि... तुम तो ऐसे अकड़ रहे हो जैसे कहीं के लक्का कबूतर हो... या फलां जनाब तो ऐसे अकड़ते हैं जैसे लक्का कबूतर हों। जामा मस्जिद की गुलाबी सीढ़ियों के सामने से तीन सड़कें खुलती थीं एक सर्राफे की तरफ, दूसरी कपड़ा बाजार की तरफ और तीसरी इब्राहीमपुरे की तरफ। बीच में एक छोटी सी गली थी – पोस्ट आफिस वाली गली। इस गली के किनारे पर ही पहली मंजिल पर पोस्ट आफिस था। पोस्ट आफिस के नीचे नेमा की मावे की दुकान थी। नेमा की दुकान के बनिस्बत चा हुसैन का मावा सस्ता होता। इसलिए यह भी अफवाह उड़ा दी गयी थी कि चा हुसैन बकरी के दूध का मावा बनाते हैं। जब चा हुसैन को तंग करना होता तो लड़के दो या तीन ग्रुप में बंट जाते। एक ग्रुप कपड़ा बाजार की तरफ से आता और आवाज कसता चा हुसैन भाड़ू... चा हुसैन गालियां निकालते। ग्रुप भाग जाता। तभी दूसरी तरफ से एक ग्रुप आता और फिर चिढ़ाता चा हसैन भाडू... जब चा हुसैन तंग आकर किसी ग्रुप के पीछे भागते हुए अपनी डलिया से दूर निकल जाते तो दूसरा ग्रुप आकर डलिया से मावे की बटिया उठा कर भाग जाता। बाद में बटिया वापस कर दी जाती।

चा हुसैन सीधे सादे गरीब आदमी थे। बस दिमाग थोड़ा सरका हुआ था। उनकी शादी मंडी बामोरा के पास एक गांव में हुई थी। पहली बार जब पत्नी मायके चली गयीं तो समस्या आयी उन्हें लिवाने जाने की। चा हुसैन के पास इतने पैसे ही न जुटते कि वे पत्नी को लिवाने जा सकें। कई महीने बीत गये। लोग उन्हें चिढ़ाने लगे। जैसे तैसे किसी से कुछ उधार मांगा और कुछ अंटी से निकाला और पत्नी को लिवाने पहुंचे। मंडी बामोरा स्टेशन पर उतर कर पत्नी के गांव तक का सफर

www.tadbhav.com

पैदल तय करना था। चिलचिलाती गर्मी के दिन थे। दोपहर का वक्त था। सूरज खोपड़ी तपा रहा था। रास्ते में एक कुलीनुमा शख्स मिल गया। कहते हैं उसने पहले उनसे बक्सा लिया। फिर उनकी टोपी ले ली। फिर शेरवानी उतरवा ली। फिर खुसना भी उतरवा लिया। अब चा हुसैन फकत चड्डी में थे। और कुली पूरी पोशाक में। ससुराल पहुंचे तो यकीन दिलाना मुश्किल हो गया कि वो ही चा हुसैन हैं। यह कोरी गप्प भी हो सकती है। किसी भोपाली खोपड़ी की उपज। चा हुसैन के बारे में ऐसे सैकड़ों किस्से थे। भोपालियों को किस्से बनाने और किस्से बढ़ाने में मजा आता था। एक बार चा हुसैन ने किसी असाध्य रोगी को दवाई का एक नुस्खा बताया और वह कारगर हो गया। दूसरे दिन से कहते हैं चा हुसैन को यूनानी शफाखाने में हकीमी करने को बैठा दिया गया।

साठ के दौर का वाकया है। सर्राफा के कुछ मनचले व्यापारियों, शहर के कुछ नामचीन लेकिन चलतेपुर्जे पत्रकारों और कुछ भूतपूर्व हो चुके राजनीतिज्ञों ने मिल कर चा हुसैन को चुनाव लड़वाने का मन बनाया और चा हुसैन को चुनाव में खड़ा कर दिया। चुनाव नगर पालिका का था लेकिन इसमें जोश आम चुनाव जैसा ही था। नेहरू से मोहभंग और राजनीतिक अराजकता का दौर था। पता नहीं सौमित्र मोहन की प्रसिद्ध कविता लुकमान अली के लुकमान अली और चा हुसैन में कोई रिश्ता है या नहीं। पर मुझे हमेशा चा हुसैन के साथ लुकमान अली और लुकमान अली के साथ चा हुसैन की याद आती है। राजनीतिक अराजकता के उस दौर के दोनों सबसे सही प्रतिनिधि थे। चा हुसैन का एक मंडल बन गया था। रोज शाम को सारे लोग मिलते। चा हुसैन के पर्चे तैयार किये जाते, छपवाये जाते और सारे शहर में बंटवाये जाते। कन्स्ट्यिुअन्सि की कोई सीमा नहीं थी। उनका चुनावचिह्न था तराजू। पर्चे के माथे पर ही छपा रहता मैं हूं चा हुसैन तराजूवाला उर्फ गरीब की जोरू और शहर भर की भौजाई। चा हुसैन को समझा दिया गया था कि भाडू का मतलब वकील होता है। इसलिए भाडू कहने पर भड़कने की जरूरत नहीं है। धीरे धीरे चा हुसैन के दिमाग में यह बात बैठ गयी थी। और अब भाडू कहने पर वे अक्सर नहीं चिढ़ते थे। उनके पर्चे में सारे अवैध कामों को वैध करवाने के वायदे होते। मसलन सट्टा, जुआ वैध कर दिया जायगा। थानों की कमाई के हिसाब से नीलामी की जायगी, जो थानेदार ज्यादा ऊंची बोली लगायेगा वही उस थाने का थानेदार होगा आदि...। उन दिनों चुनाव में हर उम्मीदवार की अलग अलग पेटियां होती थीं। सदाराम खन्ना भी चुनाव में खड़े हुए थे। लोगों का मानना था कि वह अपने घर पर जुआ खिलवाते हैं। जब उनकी पेटी खुली तो उसमें से ताश के तीन इक्के निकले। यह चुनाव हमारे जनतंत्र का सबसे सटीक और दिलचस्प रूपक था।

चा हुसैन हार गये लेकिन उनका शानदार जुलूस निकाला गया। लोगों ने पूछा कि चा हुसैन तो चुनाव हार गये फिर जुलूस क्यों? लोगों के बोदा दिमागों पर तरस खाते हुए आमसभा में एलान किया गया कि चा हुसैन उससे हारे हैं जो जीता है लेकिन दो अन्य उम्मीदवारों से तो चा हुसैन के वोट ज्यादा हैं, यह जुलूस दो उम्मीदवारों के विरुद्ध चा हुसैन की जीत का जुलूस है। चुनाव में हार जीत की ऐसी व्याख्या न पहले किसी ने सुनी थी न बाद में। उस चुनाव में लोगों की सारी दिलचस्पी चा हुसैन में ही थी। इसके बाद महीनों चा हुसैन नहीं दिखे। शायद वे बहुत बीमार हो गये थे। लेकिन बाद में भी वे चुनाव की विसंगतियों और विद्रूप के प्रतीक बने रहे और लोग हर चुनाव में शहर में नये नये चा हुसैन ढूंढते रहे। चा हुसैन कभी कभी दोपहर में रामफल वाली मस्जिद में दिखायी दे जाते थे। भोपाल में बहुत सी मस्जिदों के नाम दरख्तों के नाम पर थे। मसलन तलैया में अरीठे वाली मस्जिद, घाटी भड़भूंजा पर चमेली वाली मस्जिद, केले वाली मस्जिद, जामुनवाली मस्जिद, बड़वाली मस्जिद, आमवाली मस्जिद, मस्जिद मधुकामिनी, नीम वाली मस्जिद, गोंदेवाली मस्जिद जैसे कई नाम थे। मेरी यही दिक्कत है कि किस्से सुनाते सुनाते मैं अक्सर कहीं का कहीं निकल जाता हूं। मैंने अपने उस्ताद को एक बार अपनी इस दिक्कत के बारे में बताया तो वो कहने लगे कि यार तुम भी एक ही चुगद हो किस्से का असल मजा मुख्य किस्से में नहीं विषयांतर में ही होता है। बस वो दिन का दिन है कि

www.tadbhav.com

में आज तलक कभी पटरी पर नहीं आया।

चा हुसैन हरफनमौला थे। अपने आखिरी दिनों में पिंजारे का काम करने लगे थे। जमील मियां एक पुराने रईस थे। एक बार उन्होंने चा हुसैन को अपना गद्दा भरने को दिया। चा हुसैन ने गद्दे में रुई डाली और उसके साथ खस के दाने भी बीच बीच में डाल दिये। गद्दे पर जमील मियां जब करवट बदलते तो खस के दानों की खुशबू आती। जमील मिया दिल के भी रईस थे, चा हुसैन से इतने खुश हुए कि उन्हें अपने घर में ही रख लिया। चा हुसैन फिर अपनी मृत्यु तक जमील मियां के ही साथ रहे।

विलीनीकरण आंदोलन का अंत
और किस्सा वेश्या पुलिस का ।
भोपाल का भारत में विलय ।

एक जून 1949 को आखिरकार हमारी भोपाल रियासत का भारत में विलय हो गया। डुग्गी कहता कि विलय न होता तो आज हम एक अलग देश होते। डुग्गी जब यह वाक्य बोलता तो टिल्लू पूछता... तो क्या उखाड़ लेते? विलीनीकरण के बारे में तरह तरह की बातें कही जाती थीं। नवाब हमीदुल्ला खां चेम्बर आफ प्रिन्सेस के चांसलर थे। इसीलिए कृष्णमेनन ने कहा था कि नवाब भोपाल का राजनैतिक प्रभाव उनके राज्य के आकार और राजस्व से कहीं अधिक था। पेड़ से बड़ी परछाई थी। भोपाली कहते... छोटे से चुन्नू मियां इतनी लम्बी पूंछ...। नवाब भोपाल ने देशी रियासतों के सामने प्रस्ताव रखा था कि देशी रियासतें चाहें तो मिल कर एक कामनवेल्थ के रूप में अपनी स्वतंत्र हैसियत बनाये रख सकती हैं। वह चाहते थे कि केन्द्र में एक ढीली ढाली सी संघीय सरकार हो। तब हमारे मुल्क का नाम होता युनाइटेड स्टेट आफ इंडिया। गप्पी कहता नाम वजनदार होता। नवाब का यह भी मानना था कि ब्रिटिश हुकूमत अपनी सर्वोच्चता के अधिकार को किसी दूसरी सरकार को हस्तांतरित नहीं कर सकती। लार्ड माउण्टबेटन ने चेम्बर आफ प्रिन्सेस की जिस आखिरी मीटिंग को सम्बोधित किया था, नवाब भोपाल उस मीटिंग में शामिल नहीं हुए थे। वह किसी भी यूनियन में शामिल होने के पक्ष में नहीं थे। न हिन्दुस्तान में न पाकिस्तान में। तब हिन्दुस्तानी या पाकिस्तानी की तर्ज पर भोपाली होने की अकड़ कुछ अलग ही होती। दो मुल्कों के बीच हम लक्का कबूतर की तरह गरदन अकड़ा कर अपनी अलग ही गुटरगूं करते। नवाब भोपाल दिल्ली से जब लौट कर आये तो हवाई अड्डे पर हजारों लोग जमा थे। नवाब ने भोपाल राज्य की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। नवाब ने कहा कि वे एक गुलामी से निकल कर दूसरी गुलामी में नहीं जायेंगे। इसलिए 15 अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ तो भोपाल में कोई बड़ा जश्न नहीं हुआ। कहा जाता है कि नवाब ने दिल्ली से लौटने से पहले ही भोपाल के विलय के प्रस्ताव पर दस्तखत कर दिये थे। फिर उन्होंने इसे छिपाने की कोशिश क्यों की? क्यों हवाई अड्डे पर भोपाल को एक स्वतंत्र राज्य घोषित किया? नवाब ने कहा कि वो अपनी प्रजा की वफादारी देखना चाहते थे। हकीकत जो भी हो लेकिन इस घोषणा के बाद विलीनीकरण आंदोलन में उबाल आ गया था। विलीनीकरण आंदोलन के दो हिस्से थे । एक तो भारत में विलय और फिर भोपाल को मध्यभारत का हिस्सा बनाना। इन सारे सवालों पर भोपाल के राजनीतिज्ञों में ही विवाद नहीं था, जवाहर लाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल के विचारों में भी मतभेद था। भोपाल की सियासत इन दो भागों में बंटी हुई थी।

विलीनीकरण आंदोलन में और तेजी आ गयी थी। सारे पुरुष नेता जब गिरफ्तार कर लिये गये तो 11 जनवरी 1949 को महिलाओं ने मोर्चा सम्भाल लिया और विलीनीकरण की मांग को लेकर धरने पर बैठ गयीं। यह एक ऐसी घटना थी जिसके बारे में किसी ने नहीं सोचा था। सरकार

www.tadbhav.com

इसके लिए तैयार नहीं थी। शांति देवी और मोहिनी देवी नेतृत्व कर रही थीं। पुलिस ने धरने पर बैठी महिलाओं को हटाने की बहुतेरी कोशिश की पर नाकाम रही। पुलिस न तो महिलाओं को हाथ लगा सकती थी और न उन पर लाठी भांज सकती थी। वह इधर उधर लाठियां बजा कर महिलाओं को खदेड़ने की कोशिश कर रही थी। महिलाएं थीं कि टस से मस होने को तैयार न थीं। हार कर फायर ब्रिगेड की मोटरें बुलायी गयीं और पानी फेंका गया। अनेक महिला कार्यकर्ता घायल हो गयीं। घटना ने आग में घी का काम किया। दो दिन बाद फिर महिलाओं ने जुलूस निकाला। पुलिस महिलाओं को हाथ कैसे लगाती? महिला पुलिस की जरूरत थी लेकिन राज्य में महिला पुलिस नहीं थी। महिला पुलिस का विचार ही राज्य के लिए नया था। महिलाओं का आंदोलन फैलता जा रहा था। रातोंरात महिला पुलिस तैयार करना था। कई धुरंधर दिमाग इकट्ठे हुए और एक योजना बनायी गयी। शहर से और आसपास से धंधा करने वाली वेश्याओं को इकट्ठा किया गया और उन्हें पुलिस की वर्दी पहना दी गयी। दूसरे दिन जब महिला पुलिस आंदोलन स्थल पर पहुंची तो लोग अवाक रह गये। आश्चर्य से आंख फाड़े फाड़े लोग इस महिला पुलिस को देख रहे थे। देखते ही देखते लेकिन लोगों ने पुलिस की वर्दी में छिपी वेश्याओं को पहचान लिया। बखेड़ा खड़ा हो गया। सरकार को तुरंत इस पुलिस को वापस लेना पड़ा।

14 जनवरी को बौरास गांव में हुए गोलीकांड की सारे देश में बहुत तीखी प्रतिक्रिया हुई। और नवाब का मंत्रिमंडल समाप्त हो गया। भोपाल सी स्टेट घोषित कर दी गयी। बावन के चुनाव के बाद एक नयी सरकार का गठन हुआ। कांग्रेस ने मास्टर लाल सिंह को अपना नेता चुन लिया था। मगर उसी समय एक कार दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी। इसी को कहते हैं बिल्ली के भाग से छीका टूटना। शंकरदयाल शर्मा मुख्यमंत्री हो गये।

शहर फैल रहा था। तांगे गायब हो रहे थे
और आधी काली आधी पीली रंग की
टैक्सियां शहर में दिखने लगी थीं।

विभाजन के बाद एक पंजाबी परिवार गप्पी के घर के सामने वाले घर में आकर रहने लगा था। मेरा अनुमान था कि वो लोग गप्पी के बाबा की मृत्यु के कुछ दिन बाद आये थे। गप्पी की मां का कहना था कि वो लोग बाबा की मृत्यु के पहले आ गये थे। परिवार के मुखिया को टीबी थी। वह बहुत दुबले पतले, बीमार और बूढ़े लगते थे। उन्हें हम सब बाबू जी कहते थे। एक पुरानी मोटरसाइकिल सीढ़ियों के पास पड़ी रहती थी। उसे कभी कोई नहीं चलाता था। उस पर धूल जमी रहती। पता नहीं उसे वे पाकिस्तान से लाये थे या हिन्दुस्तान में ही खरीदा था लेकिन लगता था कि उससे उनकी कुछ यादें जुड़ी थीं, वे जब भी अकेले बैठे होते अक्सर उसी को देखते रहते। बाबू जी कहीं आते जाते नहीं थे। उनकी पत्नी खूब मोटी थीं और खूब बातूनी भी। गप्पी की मां से उनकी खूब पटती थी उनका और उनकी बेटियों का गप्पी के घर में खूब आना जाना था। हम सब उन्हें मौसी जी कहते थे। उनकी दो लड़कियां थीं। बड़ी लड़की गप्पी से बड़ी और जग्गी से थोड़ी छोटी थी। वह सुंदर थी, बहुत चंचल और बिंदास। उसे घर में मुन्नी कहा जाता था। पंजाबी लड़कियों की तरह उसका बदन भरा भरा था और वह अपनी उमर से थोड़ी बड़ी लगती थी। उसकी छातियों में उभार दिखने लगे थे। वह आती और गप्पी के गाल पर चिकोटी काट कर फुर्र हो जाती। फिर किसी कोने में खड़े होकर गप्पी से बड़े जग्गी से जाकर बतियाने लगती। कई बार दोनों कोने में खड़े बहुत देरे तक धीरे धीरे खुसुर फुसुर करते रहते। एक दिन वह उछलती कूदती आयी और ऊपर की मंजिल तक आ गयी। दोपहर का वक्त था। दालान में गप्पी और जग्गी खेल रहे थे। गप्पी ने उसे देखा तो वह अंदर के कमरे में चला गया। मुन्नी

www.tadbhav.com

ने जग्गी से कहा चलो डॉक्टर डॉक्टर खेलते हैं। और दोनों दालान में बिछे पलंग पर एक चादर के भीतर छिप गये। गप्पी ने झांक कर देखा तो कुछ समझ नहीं आया। थोड़ी देर बाद मंझले ने आवाज लगायी कि पिता जी आ रहे हैं। पता नहीं क्या बात थी, उस दिन गप्पी के पिता जी दोपहर में ही आफिस से लौट आये थे। मुन्नी जल्दी से चादर से निकल कर भाग गयी। पिता जी आये और पास ही पड़ी सैण्डिल उठायी और जग्गी को पीटना शुरू कर दिया। गप्पी को समझ नहीं आया। पिता जी कम ही बच्चों को पीटते थे। पीटते भी थे तो ज्यादा से ज्यादा एक दो झापड़। उस दिन लेकिन पिता जी ने बहुत देर तक जग्गी को पीटा। जग्गी की शिकायत किसने की यह रहस्य ही बना रहा। जग्गी की पिटाई पर गप्पी भी खुश था और मंझले भी। यही हमारे घर का चलन था। जब भी किसी बच्चे की पिटायी होती बाकी सब खुश होते। इसलिए पिटाई करवाने के लिए कभी कभी एक दूसरे की चुगली भी खाते रहते। चुगली हमेशा मां से ही की जाती थी। पिता जी से चुगली खाने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गप्पी के पिता यूं भी बच्चों से बहुत कम बात करते थे। वह एक चुप्पे किस्म के आदमी थे। वह उस जमाने के आदमी थे जब बड़ों के सामने पिता अपने बच्चों को गोद में नहीं उठाता था, प्यार करना तो असम्भव बात थी।

मौसी जी की छोटी लड़की तब बहुत छोटी थी। उसे घर में पप्पू कहा जाता था। गप्पी और पप्पू अक्सर साथ खेलते। उन्हें साथ खेलते देख कर मौसी और गप्पी की मां मुस्कुरातीं और कहतीं इन दोनों की बड़े होने पर शादी कर देंगे। दोनों लड़कियों के अलावा एक बड़ा लड़का था। वह दोनों लड़कियों से काफी बड़ा था। उसका नाम बलराम था। बलराम का एक बड़ा भाई और था जो बम बनाते हुए बम फटने से पाकिस्तान में मारा गया था। गप्पी को लगता था कि धूल से अंटी मोटरसाइकिल उसी की रही होगी। बड़े के मारे जाने के बाद ही यह परिवार भाग कर हिन्दुस्तान आ गया था। मौसी जी विभाजन या पाकिस्तान के बारे में कभी कभार ही बात करती थीं। शहर फैल रहा था। विभाजन के बाद आये लोगों के कारण शहर में सम्प्रदायों का अनुपात बदल रहा था। अंदर ही अंदर एक अजीब सा तनाव बढ़ता जा रहा था। सिन्धी व्यापारियों के पांव जमने लगे थे। अब इब्राहीमपुरा में मुसलमान व्यापारियों के बीच सिन्धी व्यापारियों की दुकानें फैलने लगी थीं। सिन्धी व्यापारी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे थे। वे कम लाभ पर धंधा करते। पुराने बनियों का व्यापार भी इससे प्रभावित हो रहा था। शहर की फिजा में गाहे बगाहे सिन्धियों के प्रति विरोध के स्वर भी सुनायी देने लगे थे।

भोपाल पहाड़ी शहर की तरह था। इतिहास की ही तरह उसकी सड़कों में भी बहुत उतार चढ़ाव थे। शहर का फैलाव शुरू हुआ तो पुराने तांगों से काम चलना मुश्किल हो गया। भोपाल के तांगे इंदौर उज्जैन के तांगों से अलग थे। यहां के तांगे वाले या तो नवाबी खानदान से अपने रिश्तों की डींगें हांकते या दिलीप कुमार के किस्से सुनाते। नया दौर फिल्म की शूटिंग भोपाल के पास बुदनी में हुई थी और उसमें दिलीप कुमार ने तांगा चलाया था। हर तांगे वाले का दावा होता कि यही वह तांगा है जिसे दिलीप कुमार ने नया दौर फिल्म में चलाया था। इसी समय शहर में पीली छत वाली काली टैक्सियों का आना शुरू हुआ। टैक्सियों ने तांगे वालों के लिए परेशानी खड़ी कर दी थी। तांगे वालों और टैक्सी वालों में आये दिन झगड़े होते। कुछ तांगे वाले इकट्ठे होकर टैक्सी में बैठते और उसे किसी सुनसान जगह ले जाकर टैक्सी में तोड़फोड़ कर देते और ड्राइवर के साथ मारपीट करते। कई दिन तक घर में बैठे रहने के बाद बलराम ने भी टैक्सी चलानी शुरू कर दी थी। एक रात अचानक ही सामने वाले घर में बहुत शोर होने लगा। रात काफी हो चुकी थी। शोर से सबकी नींद खुल गयी। रात को तो सारा किस्सा मालूम नहीं हुआ। दूसरे दिन लेकिन मौसी जी ने आकर बताया कि रात को चार तांगेवालों ने बलराम की टैक्सी की और उसे एक सुनसान सड़क पर ले गये। उन्होंने उससे एक गली में टैक्सी मोड़ने को कहा। बलराम को शक हुआ। उसने चालाकी से काम लिया और उनसे कहा कि इतनी संकरी गली में मोड़ना मुश्किल है तुम लोग नीचे उतर जाओ मैं कोशिश करता हूं। वे लोग नीचे

www.tadbhav.com

उतर गये। जैसे ही बलराम ने उन पर हेडलाइट डाली तो देखा कि वे चाकू निकाल चुके थे। बलराम ने एक्सीलेटर दबाया और टैक्सी भगा दी। चौक के थाने पर आकर ही टैक्सी रोकी। यह ऐसी घटना थी जिसने सबको डरा दिया था। बलराम ने उस दिन से रात में टैक्सी चलाना बंद कर दिया था।

लोटे साहब लोटा कहां भूल आये उर्फ
बिरजीसिया स्कूल के मास्टरों की दास्तान
और गप्पी का तिरंगा झंडा।

गप्पी पहली क्लास में कभी नहीं पढ़ा। उसे सीधे दूसरी क्लास में भर्ती किया गया था। मंझले और गप्पी दोनों उसी स्कूल में थे। मंझले सातवीं में थे और गप्पी दूसरी क्लास में। जब भी कोई मास्टर गप्पी को पीटता वह सीधे सातवीं क्लास में मंझले के पास चला जाता। बिरजीसिया मिडिल स्कूल के हेड मास्टर साहब बहुत मोटे थे और उन्हें पीठ पीछे सभी बब्बा कहते थे। वह यह जानते थे। कोई शरारती बच्चा अगर आवाज कस देता तो वे बहुत जोर से चिल्लाते थे। दशहरे के बाद टेसू गाने वालों ने एक नया टेसू बनाया था। यह टेसू स्कूल में हेडमाटसाब के बारे में छिप छिप कर सुनाया जाता। क्योंकि उसमें बब्बा शब्द आता था। टेसू सबको याद हो गया था :

बब्बा बब्बा कां गये थे
पत्तल छोड़ हगन गये थे
पत्तल ले गओ कौव्वा
बब्बा हो गये नउआ
नउआ ने मूंडी मूंड
बब्बा हो गये डूंड
डूंड पे धरा अंगरा
बब्बा हो गये बंदरा।

डिप्टी हेडमाटसाब का नाम बाबूलाल था। वह गप्पी और जग्गी को पढ़ाने घर आया करते थे। बहुत सीधे सादे आदमी थे। गप्पी के घर के पास ही रहते थे। बिरजीसिया मिडिल स्कूल की छोटी कक्षाओं में टाट पट्टी पर बैठना पड़ता था। टाट पट्टी पर बैठने के लिए जूते उतार कर बैठना पड़ता। तीसरी क्लास में नया नया ड्राइंग का मास्टर आया था। नाम था कृष्ण कुमार। वह गुस्सैल था। पहले दिन ही उसने तिरंगा झंडा बनाने को कहा। गप्पी की ड्राइंग तब बहुत खराब थी। गप्पी को समझ नहीं आया कि तिरंगा झंडा कैसे बनाया जाय। उसने आड़ी कापी के पेज को तीन भागों में बांटा और ऊपर लाल और नीचे हरा रंग भर कर पेन से बीच में चक्र बना दिया। यह भारतीय इतिहास का सबसे बुरा तिरंगा था। कृष्ण कुमार माटसाब (मैं बार बार मास्टर साहब को माटसाब लिख रहा हूं क्योंकि मास्टर साहब को इसी तरह बोला जाता था, इसे चाहें तो व्याकरण का मुखसुख सिद्धांत माना जा सकता है) ने देखा तो जोर से चिल्लाये... बेवकूफ, ऐसे बनाते हैं तिरंगा! और पेन्सिल की नोंक गड़ा कर कागज पर इतनी जोर से क्रास बनाया कि कागज फट गया। गप्पी पिन्ना तो था ही, कापी के फट जाने और बेवकूफ कहे जाने से वह तिलमिला गया था। पलट कर बोला तुम्हारे बाप की कापी है जो इसे फाड़ डाला और आकर अपनी जगह पर धम्म से बैठ गया। कृष्ण कुमार गुस्से में लाल हो गये। गप्पी के सामने आकर खड़े हुए और गप्पी के बालों को खींच कर गप्पी को खड़े होने को बोले। बाल खिचने से गप्पी की खोपड़ी भन्ना गयी। लकड़ी की स्केल बस्ते से बाहर ही पड़ी हुई थी। गप्पी ने स्केल उठायी और आड़ी स्केल से जोर से एक स्केल कृष्ण कुमार माटसाब के पैरों पर मारी। मास्टर तिलमिला गया और उसके हाथ से गप्पी के बाल छूट गये। बस इतनी सी देर थी कि गप्पी फुर्ती से उठा और क्लास

www.tadbhav.com

से बाहर दौड़ लगा दी। सीधे घर की तरफ दौड़ गया। घर के पास आकर उसे याद आया कि जूते और बस्ता तो वह स्कूल में ही छोड़ आया है। पर अब कुछ नहीं हो सकता था। मां ने पूछा तो कह दिया जल्दी छुट्टी हो गयी। स्कूल का कोई मास्टर मर गया है । मां सुन कर अपने काम धाम में लग गयीं। शाम को बाबूलाल माटसाब पढ़ाने आते थे। पिता आफिस से लौट कर बाहर बरामदे में खड़े थे उन्होंने देखा कि बाबूलाल माटसाब एक हाथ में बस्ता और दूसरे में गप्पी के जूते लटकाये चले आ रहे थे। पिता जी समझ गये। उन्होंने गप्पी को बुलाया और बाबूलाल माटसाब जब तक बैठक में दाखिल होते गप्पी की सुतायी कर दी।

अच्छे बुरे मास्टरों की लम्बी सूचियां थीं। गोवर्धन मास्टर बहुत ही मोटे थे। उनकी क्लास खत्म होने का जैसे ही घंटा बजता बच्चे बाहर निकलते ही चिल्लाते लोटे साहब लोटा कहां भूल आये... लोटे साहब इतने मोटे थे कि उन्हें कुर्सी पर बैठ जाने के बाद उठने में बहुत देर लगती थी। वह बैठे बैठे ही पढ़ाया करते थे। वह लोटे साहब कहने से चिढ़ते थे। दूर से ही चिढ़ाने वाले लड़कों को गालियां बकते। कभी भूल से कोई लड़का पकड़ायी में आ जाता तो उसकी खैर नहीं होती। लड़के का सिर अपने दोनों घुटनों के बीच दाब लेते और फिर दोनों हाथ से उसकी पीठ पर ढोल बजाते। गप्पी की पिटाई के किस्सों में एक किस्सा लोटे साहब से पिटने का भी था। हालांकि गप्पी ने उन पर आवाज नहीं कसी थी। वह कहीं और देखते हुए क्लास के दरवाजे के पास खड़ा था और तभी पीछे से चुपचाप लोटे साहब आये और उसे पकड़ लिया। उसने छूटने की बहुत कोशिश की पर छूट नहीं पाया। वह चिल्लाता रहा कि उसने आवाज नहीं कसी थी पर लोटे साहब ने कुछ न सुना और उसे धुन दिया। जैसे ही वह लोटे साहब के हाथों से छूटा जोर से चिल्लाया... पाखाने के लोटे... और भाग गया। लोटे साहब के लिए यह नया सम्बोधन था। गप्पी जब मैदान में आ गया तो पहली बार डुग्गी उसके पास आया और उसने गप्पी से हाथ मिलाया। गप्पी ने डरते डरते उससे हाथ मिलाया। पता नहीं क्यों गप्पी स्कूल में सिर्फ डुग्गी से ही डरता था। डुग्गी स्कूल के सबसे बदमाश लड़कों में गिना जाता था। वह छोटे दादा के नाम से मशहूर वैद्य जी का बेटा था। उसके बड़े भाई इंटर कालेज के दादा माने जाते थे। डुग्गी कंचे खेलने में बहुत उस्ताद था। वह सारे लड़कों के कंचे जीत लेता और उन्हें एक टीन के छोटे से डब्बे में भर कर सबके सामने बजाया करता। गप्पी को कंचे खेलने का शौक नहीं था। उसकी कभी कभार इच्छा भी होती पर न तो उसके पास कंचे होते न पैसे। बाबा की मृत्यु के बाद घर की माली हालत बिगड़ती जा रही थी। गप्पी के पिता डिस्पोजल का काम खतम होने के बाद ट्रेजरी में मुलाजिम हो गये थे।

अपना शहर जो देखते देखते साला
राजधानी हो गया। और इस तरह
जंगलों और शिकारगाहों का उजड़ना
शुरू हुआ।

गप्पी ग्यारह साल का था और मैं दस का जब कमिश्नरी शासन की पांच साल की अवधि खत्म हो गयी और हमारे शहर को मध्य प्रदेश की राजधानी बना दिया गया। डुग्गी ने कहा कि अच्छा खासा शहर था साला राजधानी हो गया। जबलपुर और रायपुर के नेताओं ने अपने अपने शहरों को राजधानी बनवाने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा दिया। पर राजधानी बना भोपाल। सरदार पटेल भोपाल को राजधानी बनाने के पक्ष में नहीं थे, नेहरू भी डांवाडोल थे। भोपाल के नेताओं ने मौलाना आजाद से सम्पर्क किया और मौलाना इसके लिए राजी हो गये। मौलाना के आगे फिर किसी की नहीं चली और भोपाल राजधानी बन गया। इसके साथ ही आसपास के जंगलों में कांक्रीट के जंगल उगने लगे। शेर

www.tadbhav.com

चीतों और जंगली जानवरों को खदेड़ दिया गया। डुग्गी के पिता चुनाव लड़ कर हार चुके थे। कांग्रेस की बात निकलते ही वह गालियां बकते। शहर अपनी पुरानी सीमाओं को लांघ रहा था। पहले छोटे तालाब का पुलपुख्ता पार करते ही सुनसान इलाके शुरू हो जाते। हालांकि उससे आगे पुलिस लाइन थी और जहांगीराबाद की आबादी भी थी पर शाम के बाद उस तरफ कम ही लोग जाते थे। जहांगीराबाद नवाब जहांगीर मुहम्मद खान ने बसाया था। 1840 में जब जहांगीर मुहम्मद खान ने जहांगीराबाद बसाया तब वहां जंगल था और वह नवाबों और ब्रिटिश पोलेटिकल एजेण्टों की शिकारगाह हुआ करता था। नवाब जहांगीर खान को इमारतें बनवाने का शौक तो था ही वह उर्दू के अच्छे शायर भी थे। उनकी शायरी से प्रभावित होकर गालिब ने अपने हाथ से लिखा अपना एक दीवान उन्हें तोहफे में भेजा था। यह अनमोल तोहफा पता नहीं कैसे और किन किन हाथों से होता हुआ साठ के दौर में एक पुरानी किताबों की दुकान लगाने वाले के हाथ लग गया। उसने इसे मात्र सात रुपये में बेच दिया। अब यह अनमोल दीवान करांची की मिर्जा गालिब अकादमी की लाइब्रेरी में रखा है। यकीन करें यह कोई भोपाली गप्प नहीं है। गाहे बगाहे हम लोग सच भी बोलते हैं।

नवाब जहांगीर खान की शादी सिकंदर जहां बेगम से हुई थी। जहांगीर खान रंगीन मिजाज नवाब थे इसलिए उनकी अपनी सास कुदसिया बेगम से हमेशा खटपट चलती रहती थी। इनके टकराव के चलते एक बार तो ब्रिटिश हुकूमत को भी भोपाल रियासत के मामले में दखल देना पड़ा। कुदसिया बेगम मजहबी पाबंदियों की कायल थीं। वह एक मजहबी खातून थीं। वे शरीयत का न केवल लिहाज करती थीं बल्कि उस पर सख्ती से अमल भी करती थीं। मजहबी पाबंदियों के मामले में जहांगीर मुहम्मद खान का ख्याल एकदम उलटा था। इसी के चलते उनके ताल्लुकात न केवल अपनी सास कुदसिया बेगम से खराब हुए बल्कि अपनी पत्नी सिकंदर जहां बेगम से भी खराब हो गये। वह शाही महल छोड़ कर मुनीर मुहम्मद कोठी में चले गये। सिकंदर जहां बेगम अपनी मां कुदसिया बेगम और अपनी बेटी शाहजहां बेगम के साथ इस्लाम नगर चली गयीं। शाहजहां बेगम के अलावा जहांगीर मोहम्मद खान की एक औलाद और थी। हरम की पीरन नाम की एक औरत से उनका दस्तगीर नाम का एक लड़का था। जहांगीर खान के इंतकाल के बाद दस्तगीर मुहम्मद खान ने भोपाल का नवाब बनने के लिए बहुत कोशिश की लेकिन सिकंदर जहां बेगम ने ब्रिटिश पोलेटिकल एजेण्ट से मिल कर सत्ता अपने अधिकार में ले ली।

अपने पिता की ही तरह शाहजहां बेगम शायर भी थीं और उन्हें नयी नयी इमारतें तामीर करने का भी शौक था। वह फारसी, उर्दू और हिन्दी में कविताएं लिखती थीं। फारसी में ताजवर के उपनाम से और उर्दू में शीरीं के उपनाम से। शीरीं उपनाम उन्होंने भोपाल की शीरीं नदी के कारण रखा था या किसी और वजह से इसका पता नहीं चलता। शीरीं नदी ईदगाह पहाड़ी और कोहेफिजा के बरसाती पानी और पहाड़ों से फूटने वाले झरनों से बनी थी। बरसात के दिनों में नदी का बहुत शोर होता। लोग कहते कि घरों में बात करना भी कई बार मुश्किल हो जाता। शाहजहां बेगम भारतेन्दु की समकालीन थीं। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका में उनकी कविताएं प्रकाशित की थीं। बेगम पर भारतेन्दु और नजीर का काफी असर था। उनकी लिखी होलियां रिआया में बहुत लोकप्रिय थीं। उनके तीन संग्रह थे। सदकुल बयान, ताजुल कलाम और दीवाने शीरीं। इसके अलावा उनकी ताजुल इकबाल में भोपाल की पूरी दास्तान थी। उनकी एक दिलचस्प किताब है तहजीब निस्वान। नवाब सुल्तान जहां का मानना था कि वह औरतों का एनसाइक्लोपीडिया है। इसमें औरतों की बीमारियों और उनके इलाज के घरेलु नुस्खे, सीने पिरोने और कढ़ाई के तरीके, जेवरों और पोशाकों के बारे में, तरह तरह के खाने पकाने के बारे में, मतलब यह कि औरतों से जुड़ी तमाम बातें उसमें हैं। पर शाहजहां बेगम शायरा थीं और उनकी जबान में कमाल की सादगी थीः

सिंगाड़े शरीफे अनार और बिही

www.tadbhav.com

बकसरत करे इसमें जलवागरी
लो आमद है चैत वैशाख की
कि जिसकी सिकत हमने यह है सुनी
चने और गेहूं हों इसमें नसीब
शिकम सैर होता अमीरो गरीब।

उन्होंने वासोख्त (अतुकांत) कविताएं भी लिखी थीं

आदमी को खाक से पैदा किया
देखिए अदना को क्या आला किया
जख्म का टांका मेरे ठहरा न आह
सौजाने इंसा गो बखिया किया
शुक्र शीरीं उसका करना चाहिए
जिसने ए शीरीं तुझे गोया किया।

किस्सा मिण्टो हाल का और
खपोटे वाली हाकियां।

मिण्टो हाल नया नया विधानसभा भवन बना था। एक शाम मैंने और गप्पी ने सोचा कि चल कर देखना चाहिए। पुल पुख्ता से आगे बढ़ते ही लेकिन धुक धुक होने लगी। मुश्किल से दो चार कदम ही आगे गये होंगे कि खतरे की बू आने लगी। यह बाहर से नहीं अंदर बैठे डर से पैदा हुई थी। खतरे कई तरह के थे। लड़कियों से ज्यादा कम उम्र के लड़कों के लिए खतरे थे। छोटी लाइन के तरह तरह के उस्तादों की कीर्ति भोपाल में थी। किसी के बारे में कहा जाता कि वह गरदन पर हाथ रख देता है तो ब्रेक लग जाता है और सांस रुक जाती है। पटा कर लड़कों को ले जाने वाले तो थे ही पर चाकू अड़ा कर लड़कों को ले जाने वाले भी कम न थे। गप्पी डर रहा था पर अहं आड़े आ रहा था। मैं कुछ देर इंतजार करता रहा कि शायद गप्पी कहेगा पर जब चुप रहा तो मैंने ही कहा कि गप्पी चलो वापस चलते हैं। गप्पी तत्काल तैयार हो गया और हम आधे रास्ते से वापस लौट आये। लगभग दौड़ते हुए हमने सारा रास्ता पार किया। लार्ड मिण्टो भोपाल रियासत में आने वाले पहले वाइसराय थे। वह बेगम सुल्तान जहां के जमाने में आये थे और आज से सौ बरस पहले उन्होंने 12 नवम्बर 1909 को सुबह नौ बजे मिण्टो हाल की नींव रखी थी। इसके बनने में 24 बरस और तीन लाख रुपये... उस जमाने में लगे थे। इतिहास का यह एक ऐसा दौर था जब ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत की आवाजें बुलंद होने लगी थीं। इसलिए सुरक्षा के इंतजाम काफी कड़े थे। दरबार और लालकोठी के पास एक इस्तकबालखाने और मेजबानखाने की जरूरत महसूस की जा रही थी। मिण्टो हाल इसी इच्छा से तामीर किया गया था। लेकिन इसका इस्तेमाल वह कभी नहीं हुआ जिसके लिए इसे बनाया गया था। कुछ दिन इसे फौजी छावनी की तरह इस्तेमाल किया गया। सैयद अशफाक अली ने लिखा है कि हुस्न के सरचश्मे को कोहे आतिश फिशां में तब्दील कर दिया गया। कुछ दिन भोपाल की शहजादी ने इसके उस हाल को जिसमें बाद में विधानसभा की मीटिगें होती थीं, स्कैटिंग हाल बना दिया था। डुग्गी ने कहा जहां पहले शहजादी और उसकी सहेलियां स्कैटिंग करती थीं अब सियासत स्कैटिंग कर रही है। कुछ दिन इसमें हमीदिया कॉलेज था। गप्पी के मंझले मामा उस समय हमीदिया कॉलेज में पढ़ते थे। वह बहुत खूबसूरत थे और दो लड़कियों से एक साथ प्रेम करते थे। वह गप्पी के घर में ही रहते थे। एक दिन वह एक लड़की को लेकर चम्पत हो गये। उन्होंने प्रेमविवाह कर लिया था। उन दिनों प्रेमविवाह एक बहुत बड़ी घटना थी। इसको लेकर घर में बहुत हंगामा हुआ। नाना नानी समेत सारे

www.tadbhav.com

लोग इकट्ठा थे। बड़े बड़े डायलाग रात दिन बोले जा रहे थे। नाना ने कहा कि मंझला मेरे लिए मर गया। मैं जीवन भर उसका मुंह नहीं देखूंगा। नानी ने मंझले द्वारा की गयीं जाने कब कब की बातों के सारे मुर्दे खोद डाले थे। काफी रोना धोना मचा। छोटे मामा विदेश में थे। उन्होंने हनुमान जी की कसम खाते हुए लम्बा पत्र लिखा कि वह कभी प्रेमविवाह नहीं करेंगे। घर में बवाल आया हुआ था। गप्पी बहुत खुश था। उसकी मंझले मामा से बिल्कुल पटरी नहीं बैठती थी। वह जब भी कैरम खेलने बैठता मामा उसकी गोटियां उठा कर चल देते और कह देते जाओ पढ़ने बैठो। मंझले मामा और गप्पी में आये दिन झगड़ा हो जाता।

राजधानी क्या बनी खाली छूटी जगहें तेजी से खत्म होने लगीं। गलियों या सड़कों के बाजू में छूटी हुई जगहों में पहले लड़के खपोटों से हॉकी खेला करते थे। दोपहर में हॉकी खेलते लड़के जगह जगह दिख जाते। गलियों में दोनों तरफ नालियां थीं। बॉल को नाली में जाने से बचाने के लिए स्टिक वर्क की ज्यादा प्रेक्टिस की जाती। बन्ने खां एक ऐसे खिलाड़ी थे जिनसे बॉल को छीनना आसान काम नहीं था। नालियों की गंदगी ने शहर के हाकी खिलाड़ियों को कलाई का हुनर सिखा दिया था। हाकी और भोपाल में चोली दामन का रिश्ता था। इसी दौर में कुछ मध्यवर्ग और रईस घरों के लड़के अलीगढ़ पढ़ने जाने लगे थे। छुट्टियों में जब वो वापस आते तो अपने साथ हॉकी स्टिक भी लेकर आते। गर्मियों की छुट्टियों में इसलिए हॉकी खेलते लड़के जगह जगह दिखायी देते। मोहल्लों में ही टूर्नामेण्ट होते रहते। अलीगढ़ से हॉकी स्टिक लेकर आने वाले जाते समय अपनी स्टिक किसी न किसी को दे जाते। इस तरह धीरे धीरे खपोटों के साथ ही हॉकी स्टिक भी भोपाल की हॉकी में दिखने लगी थी। 1909 में मिण्टो हाल की ही नींव नहीं रखी गयी थी, काली परेड ग्राउंड पर पहला हाकी टूर्नामेण्ट भी हुआ था। पहले हॉकी स्टिक का चलन नहीं था। आगे से मुड़ी लकड़ी जिसे खपोटा कहा जाता था, उसी से हाकी खेली जाती थी। हॉकी के कई क्लब बन गये थे। सिकंदरिया क्लब, भोपाल हीरोज, नूरयाक्लब, इकतिदारिया क्लब, अलैक्जैण्ड्रिया ओल्ड ब्वायज एसोसिएशन और पुलिस का भी क्लब था। न उस समय हाकियां थीं न टीम की यूनीफार्म। पाजामे को ऊपर चढ़ा कर निक्कर की शक्ल दे दी जाती और उस पर लम्बी सी शेरवानी अपनी जगह कायम रहती। 1936 के बर्लिन ओलम्पिक के लिए जो भारतीय टीम चुनी गयी उसमें अहसन मुहम्मद खां और अहमद शेर खां को भोपाल से चुना गया था। कप्तान का चुनाव होने लगा तो ध्यानचंद, अहसन मुहम्मद खां और जाफर शाह को बराबर बराबर वोट मिले थे। मगर जाफर शाह और अहसन मुहम्मद खां ने अपना नाम वापस ले लिया और ध्यानचंद हॉकी के कैप्टन बन गये। पाकिस्तान की हॉकी टीम में भी भोपाल से पाकिस्तान चले गये कई खिलाड़ी खेला करते थे। शहजादी आबिदा सुल्तान बाद को पाकिस्तान चली गयीं वरना उन्होंने नूरूस्सबाह के पास बाकायदा एक हाकी ग्राउंड बनवाया था।

सोने के डंडे पर लाल झंडा। गप्पी का
दूसरा स्कूल। और अपनी याददाश्त का
पहला दंगा।

शहर में कम्युनिस्ट पार्टी के अलावा दूसरी सबसे बड़ी पार्टी हिन्दू महासभा थी। कांग्रेस का नम्बर तीसरा था। कम्युनिस्ट पार्टी से शाकिर अली खान ही हमेशा विधानसभा का चुनाव जीतते। जो कम्युनिस्ट पार्टी से चिढ़ते थे उसे चार लोगों की पार्टी कहते। चार लोग याने बालकिशन गुप्ता, गोविन्द बाबू, मोहिनी देवी और शाकिर अली खान। बालकिशन गुप्ता विलीनीकरण के भी प्रमुख नेताओं में थे। विलीनीकरण आंदोलन समाप्त होने के बाद कांग्रेस ने उन्हें पार्टी में आने का निमंत्रण दिया था, पर वह नहीं गये। उनके बड़े भाई सर्राफे के बड़े व्यापारी थे। जामा मस्जिद के नीचे उनकी दुकान थी। दुकान

www.tadbhav.com

में एक तहखाना था। दुकान बंद होने पर सारा सामान उसी तहखाने में रख कर ताला लगा दिया जाता था। दुकान में दरवाजे नहीं थे। दुकान में गद्दे और सफेद चादरें बिछी रहती थीं। जो किसान दिन में चांदी खरीदने या गिरवी रखने आते और शाम को लौट नहीं पाते, उनके नाम पर्ची काट दी जाती थी। पर्ची से उन्हें दुकान के गद्दों पर सोने और शिब्भू चाचा के अग्रवाल पूड़ी भंडार में पूड़ी सब्जी खाने का परमिट मिल जाता था। इस दुकान पर रात बारह एक बजे तक सर्राफे के पटियेबाजों का जमघट लगा रहता था। रात चांदी के सट्टे का भाव खुलने के बाद ही लोगों की घर की तरफ रवानगी डलती। बालकिशन गुप्ता के दूसरे भाई ठेकेदार थे। पर बालकिशन गुप्ता कम्युनिस्ट पार्टी में थे। उन्होंने एक फिल्म में गाने भी लिखे थे। उनकी और एडवोकेट सूरजमल जैन की ही वजह से सर्राफे के वोट शाकिर साहब को मिलते थे।

डुग्गी की फुफेरी बहन की शादी थी। घर पर खाना चल रहा था। अख्तर आपा भी आयी हुई थीं। अख्तर आपा भी कम्युनिस्ट पार्टी में थीं। मिट्ठू लाल सेठ की छोटी लड़की पंगत में बैठी हुई थी। मिट्ठू लाल सेठ नगर सेठ के भाई थे। उनकी लड़की डुग्गी से साल दो साल बड़ी होगी। चुनाव के दिन थे। हिन्दुओं में एकता बनाने की कोशिशें की जा रही थीं। उद्धवदास मेहता को जिताने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा दिया गया था। किसी ने अख्तर आपा से कहा – लगता है इस बार कम्युनिस्टों की दाल नहीं गलेगी। अख्तर आपा बहुत हाजिरजवाब थीं तत्काल बोलीं देखते जाओ मियां, दाल किसी की गले जीतेंगे तो शाकिर साहब ही। डुग्गी ने कहा कि लेकिन सर्राफा तो पूरा भाई जी (उद्धवदास मेहता को सम्मान के साथ भाई जी कहा जाता था) के पीछे लामबंद हो गया है। अख्तर आपा ने कहा, कोरी अफवाह है। चुनाव के दिन देखना। तभी लपक कर मिटठू लाल की लड़की बोली यह सोने के डंडे पर लाल झंडा कब तक चढ़ा रहेगा आपा? आपा को इस तरह के वाक्य की उम्मीद नहीं थी। अचानक इस हमले से वह निहत्थी हो गयीं। वह खिसियानी सी हंसी हंस कर एक तरफ चली गयीं। उद्धवदास मेहता विलीनीकरण में भी सक्रिय रहे थे। उनका घर गप्पी के ही मोहल्ले में था। गप्पी बहुत अर्से तक नहीं जानता था कि मेहता जी से उसके परिवार का क्या रिश्ता है। एक बार गप्पी ने पूछा तो पिता जी ने कह दिया कि वह तुम्हारे ताऊ जी हैं। कई बरस बाद गप्पी को पता चला कि उसके पिता की शादी कभी मेहता जी की बहन से तय हुई थी। वह शादी लेकिन तय होने के बाद टूट गयी थी। उसके बाद बरसों तक दोनों परिवारों में अनबन चलती रही। जब सम्बंध धीरे धीरे सामान्य हो गये तो गप्पी के पिता ने गप्पी के सबसे बड़े भाई को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में भेजना शुरू कर दिया था। संघ तब हिन्दू महासभा के साथ था। मुश्किल से एक हफ्ता भी नहीं हुआ होगा कि गांधी जी की हत्या हो गयी। गप्पी के पिता सरकारी अफसर थे और कुछ मामलों में बहुत डरपोक थे। उन्होंने तत्काल बड़के का संघ में जाना बंद करवा दिया। इसके बाद कभी उन्होंने किसी को संघ में नहीं भेजा। उनके शंकरदयाल शर्मा से बहुत अच्छे सम्बंध थे। शंकरदयाल जी का घर में कभी कभार आना जाना भी था। श्रावणी पर बड़े तालाब के घाट पर शिव मंदिर में गप्पी के पिता जी ही यज्ञोपवीत बदलवाने का कार्य करवाते। इस आयोजन में शंकरदयाल जी अक्सर आते थे। गप्पी के घर की बैठक में जवाहर लाल नेहरू और शंकरदयाल शर्मा का एक फोटो लगा रहता था। भाई जी को इसलिए लगता था कि गप्पी के पिता कांग्रेस के समर्थक हैं और उन्हीं को वोट देते हैं।

मेहता जी अच्छे वक्ता नहीं थे। उनकी जगह आमसभा में भाषण भगवानदास सारस्वत देते थे। भगवानदास सारस्वत छुटपन में चौक के एक होटल में कप प्लेट धोने का काम करते थे। एक दिन भाई जी उन्हें अपने साथ ले गये। उद्धवदास मेहता नेता होने के साथ ही एक अच्छे वैद्य भी थे और उनकी एक फार्मेसी थी। भगवानदास सारस्वत को उन्होंने दवाएं कूटने के काम पर लगा दिया था। वह पढ़े लिखे तो नहीं थे पर लोगों की बातें सुन सुन कर उन्होंने भाषण देना सीख लिया था। भाई जी धीरे धीरे उन्हें राजनीतिक सभाओं में ले जाने लगे थे। अब लोग हिन्दू महासभा में भाई जी के बाद

www.tadbhav.com

उन्हीं को शहर का सबसे बड़ा नेता मानते थे। उनकी एक आंख खराब थी और वह गहरे रंग के ग्लास वाला चश्मा लगाते थे। साम्प्रदायिक भाषण देने में उनका कोई मुकाबला नहीं था। उन्होंने कई बार दंगा करवाने की नौबत पैदा की थी। एक बार बरखेड़ी में भगवानदास सारस्वत भाषण दे रहे थे। बरखेड़ी मुस्लिम बहुल इलाका था। सभा से पहले मंच पर शस्त्र पूजा की गयी थी। मंच पर तलवारें रखी हुई थीं। भाषण देते देते सारस्वत जोश में आये और तलवार उठा कर गरजे कि मुसलमानो तुम्हारी किताब में कयामत के दिन जिस काणां दज्जाल का जिक्र किया गया है, मैं वो ही कांणा दज्जाल हूं... आगे का वाक्य बोल पाते, तभी कोई बिल्ली जाने कहां से मंच पर कूदी और तभी कहीं से एक गाय भीड़ में घुस आयी... देखते ही देखते भगदड़ मच गयी। जिसको जिधर रस्ता मिला उधर ही दौड़ गया। किसी ने आवाज मार दी कि दंगा हो गया... दंगा हो गया। दुकानों के फटाफट शटर गिरा दिये गये। सारे शहर में सनाका खिंच गया। थोड़ी देर बाद पुलिस की गाड़ी से एलान हुआ कि दंगा नहीं हुआ है। सभा में एक गाय के आ जाने के कारण भगदड़ मच गयी थी। लोग अफवाहों पर ध्यान न दें। दूसरे दिन सभास्थल पर सैकड़ों जूते चप्पल और दर्जनों साइकिलों का ढेर लगा था। भगवानदास सारस्वत की टक्कर का एक नेता मुस्लिम लीग में भी पैदा हो गया था। एक दिन सारस्वत गरजते तो दूसरे दिन हाशमी उसका जवाब देते। दोनों में तीखी नोंकझोंक होती। शहर इस नोंक झोंक में एक सार्वजनिक कामेडी की तरह मजा लेता। साम्प्रदायिक जुमलेबाजी के बावजूद किसी किस्म का तनाव नहीं था। पर धीरे धीरे तनाव पैदा करने के उपाय खोजे जा रहे थे।

गप्पी और मैं सातवीं या आठवीं क्लास में थे। रंगपंचमी का दिन था। होली के हुरियारों के साथ रंग खेलते हुए हम लोग बुधवारा के पास निकल आये थे। हमारे साथ डुग्गी और सलीम भी था। तभी अचानक दंगा शुरू हुआ। चारों ओर पत्थर सन्ना रहे थे। बचते बचाते हम चारों भागे। बुधवारा से चौक की तरफ आने वाली कई संकरी गलियों से निकलते हुए हम भागते रहे। सलीम कहीं बीच से निकल कर अपने घर की तरफ चला गया था। डुग्गी इतवारे जाने वाली गली में मुड़ गया था। अंत में मैं और गप्पी ही बचे थे किसी तरह हम एक पतली सी गली से निकलते हुए अपने घर पहुंचे थे। इसके कुछ देर बाद ही कर्फ्यू का एलान करती गाड़ियां सड़कों पर घूमने लगी थीं। लोगों के लिए तो सड़कों पर निकलने की पाबंदी थी पर अफवाहों को सारे शहर में घूमने की खुली छूट थी। मैंने और गप्पी ने पहली बार कोई दंगा देखा था। कई दुकानें हमारे सामने लुटी थीं। लोहा बाजार के कोने पर नागर वाच कंपनी नाम की दुकान हमारे देखते देखते लूटी गयी थी। लखेरापुरा में भी एक कपड़े की दुकान हमारे सामने लुटी थी। चम्पालाल गप्पी का पक्का दोस्त था। वह हमारे साथ ही पढ़ता था। उसकी दुकान पर किसानों के लिए जूते बनते थे और कोल्हापुरी चप्पलें मिलती थीं। वह गेवरडीन का एक पूरा थान लूट कर ले आया था। इस बात को वह बहुत शान से बताया करता था। कर्फ्यू जारी था। रात में अचानक अफवाह उड़ी की लखेरापुरा में आग लगा दी गयी है और मोचियों की सारी दुकानें जल कर राख हो गयी हैं। मोचियों की दुकानों की पट्टी गप्पी के घर से दस बारह घर बाद ही शुरू होती थी। अफवाह के साथ ही जाग पड़ गयी और बहुत शोर होने लगा। कर्फ्यू के बावजूद मोहल्ले के लोग सड़कों पर निकल आये थे। कुछ ही देर में पुलिस आ गयी और उसने वापस सबको घर के अंदर भेज दिया। तीसरे रोज कर्फ्यू खुल गया था। पिता जी आफिस गये थे। मां नरसिंहगढ़ गयी हुई थीं। घर में गप्पी और उसकी बहन थी। शाम को बहन ने कहा कि चौक तक जाकर देख अगर कोई सब्जी की दुकान खुली हो तो जाकर कुछ सब्जी ले आ। गप्पी सब्जी लेने चला गया। लौटते में देखा कि पुलिस ने मस्जिद के सारे दरवाजों को घेर लिया है और एलान हो रहा है कि सब लोग अपने अपने घर में चले जायें। देखते ही देखते पुलिस ने हवाई फायर शुरू कर दिये। गप्पी का घर मस्जिद के एकदम पास था। गोलियां चलने की आवाज से उसकी बहन बहुत घबरा गयी। गप्पी लौट रहा था। उसके लिए यह एक तमाशा ही था। वह अपने कौतुहल को रोक नहीं पाया और रुक गया।

www.tadbhav.com

चौक में कोई डर भी नहीं था। उधर बहन का घबराहट के मारे बुरा हाल था। पिता जी भी घर में नहीं थे। जब गप्पी घर में घुसा तो बहन बुरी तरह से रो रही थी। बाद में कई तरह की अफवाहें उड़ीं कि मस्जिद में हथियार जमा थे और मुसलमानों ने तय किया था कि नमाज के बाद वे इकट्ठे होकर निकलेंगे और सर्राफा लूट लेंगे आदि...। भोपालियों में जो गप्प उड़ाने का हुनर था उसका दुरुपयोग होना शायद तभी पहली बार शुरू हुआ होगा।

आठवीं के बाद गप्पी का स्कूल बदल गया था। हमीदिया हायर सेकेण्डरी स्कूल पहले फायर ब्रिगेड आफिस के पास था। इसके आंगन में एक ऊंची सी दीवार थी और दीवार की दूसरी तरफ हमीदिया गर्ल्स हायर सेकेण्डरी स्कूल था। ऊपर की मंजिल से दूसरी तरफ का आंगन दिखायी देता था। खाने की छुट्टी में जब लड़कियां आंगन में आ जातीं तो बहुत सारे लड़के इधर की गैलरियों में चढ़ जाते। दुपहर की छुट्टी का सारा समय लड़कियों के खिलखिलाने और लड़के लड़कियों के बीच इशारेबाजी में बीत जाता। कुछ ही दिनों बाद ब्वायज स्कूल को यहां से हटा कर छोटे तालाब के पास गिन्नौरी में ले जाया गया। गिन्नौरी का यह भवन इंटर कालेज का था। इंटर कालेज समाप्त हो गया था। अब पहले की तरह मेट्रिक बोर्ड नहीं था। बोर्ड का इम्तहान ग्यारहवीं में होता था। ग्रेजुएशन तीन साल का हो गया था। लेकिन अजमेर बोर्ड वाला मेट्रिक भी साथ साथ चल रहा था।

जग्गी पढ़ने में शुरू से ही कमजोर थे। गर्मी की छुट्टियों में जब सारे भाई बहन नरसिंहगढ़ में इकट्ठे हो जाते तभी स्कूल की परीक्षाओं का रिजल्ट खुलता। जग्गी की अक्सर ही सप्लीमेण्ट्री आती और उसे बीच छुट्टियों में पढ़ाई करने के लिए भोपाल लौटना पड़ता। दो साल तक लगातार फेल होने के कारण दसवीं क्लास में जग्गी और गप्पी दोनों साथ आ गये थे। जग्गी ने अजमेर बोर्ड छोड़ कर हायर सेकेण्डरी में ही दसवीं में दाखिला ले लिया था।

राजधानी बनने से एक बरस पहले ही गप्पी का छोटा भाई पैदा हो गया था। जग्गी और गप्पी जब एक ही क्लास में आ गये तो उनमें आये दिन झगड़े होते रहते। जग्गी घर में सबके लाड़ले थे। जब वह पैदा हुए थे तो उन्हें सुखिया रोग हो गया था, इसलिए वे कई बरस तक नरसिंहगढ़ रहे थे। नाना और नानी के भी वह लाड़ले थे। उन्हें दूसरों की कमजोरियों को पहचानना ज्यादा बेहतर ढंग से आता था। वह सुबह जल्दी उठते और नहा धोकर गायत्री मंत्र जपने बैठ जाते। पिता देखते और खुश हो जाते। शाम को जब मां खाना बना रही होतीं या जब मां छूने से होतीं तो खाना बनाने में मदद करने पहुंच जाते। सारा घर का सामान साइकिल पर लाद कर ले आते। महीने का सामान लाने और रोज की सब्जी भाजी लाने का काम अक्सर वही करते। गप्पी को इस बीच लगता कि कोई उससे प्यार नहीं करता है। मां का सारा ध्यान छोटे की तरफ चला गया था। गप्पी किसी भी चीज की मांग करते तो उन्हें डांट पड़ जाती। घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। बड़के को इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए बम्बई भेज दिया गया था। इसलिए बजट गड़बड़ाया हुआ था। किसी किताब के लिए गप्पी पैसे मांगते तो तत्काल उन्हें मौसी के लड़कों का उदाहरण दिया जाता कि उन्हें देखो, वो लाइब्रेरी से लाकर किताब पढ़ लेते हैं। गप्पी को ये सारी चीजें समझ नहीं आती थीं। उसे अक्सर लगता कि कोई उसे प्यार नहीं करता। वह दिनोंदिन चिड़चिड़ा होता जा रहा था। वह अक्सर घर से बाहर रहता। सारा सारा दिन उसके घर से बाहर रहने और रात को भी देर से घर लौटने को लेकर अक्सर किचकिच मची रहती। एक बार भुआ आयी हुई थीं। गप्पी घर में जैसे ही घुसा उसके पिता ने भुआ को आवाज लगायी कि जल्दी आओ गप्पी आ गये हैं, देर करोगी तो ये फिर चले जायेंगे। पिता ने बहुत व्यंग्य के साथ यह बात कही थी। मां की शिकायत थी कि वह जब भी बोलना शुरू करती हैं गप्पी सुनता नहीं और चप्पल घाल कर चल देता है। कभी कभी गप्पी कहता कि लगता है मैं तुम्हारा बेटा नहीं हूं... मां चिढ़ कर कहतीं... हां तुम्हें घूड़े पर से उठा कर लाये थे... वह भी चिढ़ कर जोड़ता हो सकता है अनाथालय से लाये हो... मां और चिढ़ जातीं, कहतीं... हां हमारे कम थे न, इसलिए तुम्हें

www.tadbhav.com

अनाथालय से लाये थे...। गप्पी के पिता अनाथालय ट्रस्ट के अध्यक्ष भी थे। मां का यह ऐसा तर्क था कि गप्पी किसी किस्म की फैण्टेसी नहीं गढ़ पाते थे। उनसे बड़े तीन भाई और एक बहन थी और अब उनसे छोटा भी एक भाई हो चुका था। घर में सबको लगता था कि छोटे के होने के बाद गप्पी का चिड़चिड़ापन बढ़ गया है। सब मानते थे कि गप्पी को लगता होगा कि सबसे छोटे होने के कारण जो उसे मिला हुआ था, वह उससे छिन गया है। सच तो पता नहीं पर गप्पी में तेजी से घर के प्रति एक अलगाव पैदा हो रहा था।

उस दिन सुबह से ही बारिश हो रही थी।
जिस दिन गप्पी घर छोड़ कर बम्बई
भाग गया।

मोतीलाल मास्टर साहब तबादले पर नीमच से आये थे। उनका गप्पी के घर में आना जाना शुरू हुआ तो उन्होंने सारे घर को अपने रंग में रंग लिया। कुछ ही दिन बाद स्थिति यह हो गयी कि कोई काम मोतीलाल मास्टर साहब से पूछे बिना न होता। गप्पी के पिता आसानी से किसी पर विश्वास नहीं करते थे। पर पता नहीं मोतीलाल जी ने क्या जादू किया कि वह हर बात में उनसे राय मशविरा करते। मोतीलाल मास्टर साहब की आंखें कुछ अजीब सी थीं। चढ़ी चढ़ी सी। सामने देख कर बात करते तो लगता कि वह छत की तरफ देख रहे हैं। उन्हीं ने बताया था कि वह तंत्र साधना करते थे। जिसके कारण उन्हें ब्लड प्रेशर हो गया था और उनकी आंखें स्थायी रूप से ऊपर चढ़ गयी थीं। गप्पी को उनका हर मामले में दखल देना पसंद नहीं था। हायर सेकेण्डरी पास करने के बाद ओम को छोड़ कर गप्पी के सारे दोस्त मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय में दाखिला लेना चाहते थे। सबके बीच एक ही वाक्य अक्सर सुनायी पड़ता कि फर्स्ट इयर इज रेस्ट ईयर। सब मान कर बैठे थे कि बी.एससी. फर्स्ट ईयर तो एक साल में निकल ही नहीं सकता। गप्पी इससे सहमत नहीं था। उसकी इच्छा पहली बार में ही फर्स्ट ईयर पास करने की थी। वह मेडिकल में जाना चाहता था। वह सिर्फ डॉक्टर होने के सपने देखता। ओम उसका पक्का दोस्त था उसके दो बड़े भाई वैद्य थे और वह किसी भी तरह मेडिकल में जाना चाहता था। गप्पी और ओम ने तय किया कि वो मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय के बजाय सैफिया कॉलेज में दाखिला लेंगे। गप्पी के पिता इसके लिए तैयार थे। सैफिया कॉलेज प्राइवेट कॉलेज था और शहर के एक सबसे बड़े बोहरा व्यापारी सज्जाद हुसैन का था। शहर के बहुत सारे पेट्रोल पम्प और होटल उन्हीं के थे। वह एक मुस्लिम कालेज माना जाता था। कुछ लोग उसे भोपाल की अलीगढ़ यूनिवर्सटी भी कहा करते थे। यह जुमला बुरे अर्थ में बोला जाता था। वह एक ऐसा कॉलेज था जिसमें साइंस, आर्टस्, कामर्स और लॉ सभी फेकल्टीज थीं। वहां पहली क्लास से लेकर पोस्ट ग्रेजुएशन तक था।

ओम और गप्पी ने पूरा मन बना लिया था कि वह बाकी दोस्तों से थोड़ा अलग हट कर जम कर पढ़ाई करेंगे और पहली बार में ही फर्स्ट ईयर पास करके मेडिकल में दाखिला लेंगे। इन दिनों घर में थोड़ा तनाव शुरू हो चुका था। जग्गी और गप्पी में आये दिन झगड़ा होता रहता। गप्पी के सैफिया कॉलेज वाले फार्म पर पिता जी को दस्तखत करना था। शाम को मोतीलाल मास्टर साहब अक्सर ही घर आते थे। उस शाम पिता जी ने फार्म पर दस्तखत करने को पेन खोला ही था कि मोतीलाल मास्टर साहब ने घर में प्रवेश किया। पिता जी के हाथ में फार्म देखा तो पूछा किसका फार्म है? पिता जी ने बताया कि गप्पी सैफिया कॉलेज में एडमीशन ले रहा है। इतना कहना था कि मोतीलाल मास्टर साहब ने तपाक से कहा वह तो गुंडों का कॉलेज है। उसमें तो कतई एडमीशन नहीं लेना चाहिए। पिता जी साइन करते करते रुक गये और गप्पी को बुला कर कहा कि तुम मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय में एडमीशन ले लो। सैफिया कॉलेज ठीक नहीं। गप्पी ओम से कह चुका था।

www.tadbhav.com

गप्पी ने बहुत तर्क दिये पर पिता जी नहीं माने। वह एक बार तय कर लेते तो तय कर लेते। फिर उन्हें कोई नहीं मनवा पाता। गप्पी भी कम जिद्दी नहीं था। पिता जी ने सैफिया का फार्म फाड़ कर उसकी चिन्दियां बाहर फेंक दीं। कमरे से बाहर जाते हुए उन्होंने फीस के लिए अस्सी रुपये दिये और कहा कल जाकर मोतीलाल कॉलेज में जमा कर दो। गप्पी भिनभिनाते हुए कमरे से निकला और सीधे सीढ़ियां उतर कर ओम के घर चला गया।

ओम भी थोड़ा दुखी हुआ। उसने फार्म भर दिया था। गप्पी भिन्नाया हुआ था। गप्पी और ओम घर से निकले, किराये की साइकिलें लीं और घूमने निकल गये। बहुत देर तक यहां वहां भटकते रहे। भटकते भटकते रात हो गयी थी। घड़ी देखी, लगभग आठ बज रहा था। गप्पी ने कहा अब लौटना चाहिए। वरना घर में और बखेड़ा मचेगा। शाहजहांनाबाद में मॉडल स्कूल के पास वाले दरवाजे से नीचे जाती सड़क एक सीधी ढलान जैसी है। साइकिल उस पर तेजी से उतरने लगी। जंगली फिल्म कुछ दिन पहले ही देखी थी। दरवाजे के नीचे आकर दोनों ने जोर से चिल्लाया याहू...। दरवाजा गूंज गया। दरवाजे के सामने खड़ा ट्राफिक वाला इस अप्रत्याशित आवाज से अचकचा सा गया था। उसने तत्काल हाथ बढ़ा कर साइकिल पकड़ ली। रात हो चुकी थी। साइकिल में उन दिनों लाइट लगाना जरूरी था। साइकिलों में लाइट नहीं थी। गप्पी ने ट्राफिक वाले को समझाने की कोशिश की कि उन्हें बहुत दूर जाना है। पर वह नहीं माना। उसने कहा दोनों साइकिल की हवा निकाल दो। गप्पी आनाकानी कर रहा था। ट्राफिक वाला हवा निकालने को झुकने लगा तो गप्पी झुका और मुंह से हवा निकलने की आवाज करके बोला कि लो हवा निकल गयी। ट्राफिक वाला समझ गया। देखते देखते दोनों में झूमा झटकी हो गयी। सामने ही थाना था। उसने एक पुलिस वाले को आवाज देकर बुला लिया। पुलिस वाला और ट्राफिक वाला मिल कर दोनों को पकड़ कर थाने ले गये मामला निपटते निपटते बहुत रात हो गयी।

गप्पी दबे पांव घर में घुसा लेकिन सीढ़ी चढ़ते ही सामने जग्गी आ गया और छूटते ही उसने कहा कहां से आ रहे हो इतनी रात को? गप्पी यूं भी काफी उखड़ा हुआ था। थाने में पुलिस वाले ने उसे दो एक झापड़ भी जड़ दिये थे। झूमा झटकी में कंधे पर से उसकी कमीज फट गयी थी। उसने उतनी ही उजड्डता से कहा तुमसे मतलब! जग्गी ने कहा मुझे सब मालूम है तुम कहां जाते हो क्या करते हो। गप्पी और उखड़ गया तभी पिता जी जाने कहां से प्रकट हुए और एक झन्नाटेदार झापड़ गप्पी के गाल पर पड़ा... झापड़ का पीछा करते उनके शब्द गूंजे... बड़े भाई से जबान लड़ाता है। गप्पी गुस्से में फन्नाता हुआ अपने कमरे में चला गया। नींद उड़ चुकी थी और दिमाग गुस्से से उबल रहा था। उसने तय किया, अब इस घर में वह नहीं रह सकता। घर छोड़ देने का विचार पहली बार उसके मन में नहीं उठा था। घर में जब जब तनाव बढ़ता वह सबसे पहले घर छोड़ने के बारे में ही सोचता था। वह बहुत छुटपन में एक बार घर छोड़ने की कोशिश कर चुका था। वह कहां जायगा? क्या करेगा? बहुत रात तक वह इसी बारे में सोचता रहा। सोचते सोचते शायद एक झपकी सी लगी होगी जो जल्दी ही खुल भी गयी।

गप्पी सुबह उठा तो धीमी धीमी सी बारिश हो रही थी। वह तैयार हुआ। फीस के रुपये जेब में रखे और एक छाता लेकर घर से निकल गया। बाजार जाकर उसने एक छोटा सा खटके वाला चाकू खरीदा। गर्मी की छुट्टियों में वह अपनी बहन के साथ बम्बई गया था। अभी तक उसने इतनी लम्बी दूरी की एकमात्र वही ट्रेन देखी थी। उसका उसे समय भी पता था। उसे लगा कि भोपाल से भागने के लिए बम्बई ही सबसे बढ़िया जगह है। फिल्में देख देख कर फिल्मों में जाने का एक सपना भी मन के किसी कोने में दबा रहा होगा। बम्बई के बारे में लेकिन कई किस्से उसने सुन रखे थे। इसलिए उसे लगा कि एक चाकू उसके पास होना चाहिए। हालांकि वह बहुत छोटा सा चार इंच का चाकू था। वह सीधा स्टेशन गया। टिकिट खरीदा और ट्रेन के आने तक इधर उधर घूमता रहा। वह लगातार

www.tadbhav.com

इधर उधर देख रहा था कि कोई परिचित उसे देख न ले। इस घबराहट में वह कभी छाते को खोल लेता कभी बंद कर लेता। ट्रेन आयी तो वह उसमें चढ़ गया और छाता उसने स्टेशन पर ही छोड़ दिया। ट्रेन चली तो उसने राहत की सांस ली।

गप्पी की उस दिन की डायरी का एक पन्ना
जो भागने वाले दिन के कई दिन बाद
लिखा गया होगा।

मैंने घर छोड़ दिया। वह डरावना सपना आखिरकार सच हो गया। मैं अक्सर ऐसा सपना देखता था कि मैने घर छोड़ दिया है और मैं एक ट्रेन में बैठा हुआ कहीं चला जा रहा हूं... कहां जा रहा हूं यह मैं कभी नहीं जान पाया। मैं सपने में कहां जाते हुए अपने को देखता था, यह खुद मेरे लिए भी एक रहस्य था...। ट्रेन जैसे जैसे आगे जा रही थी एक अनिश्चितता मन में बढ़ती जा रही थी। यह सपना नहीं था मैं सचमुच जा रहा था। घर छोड़ दिया था और गुस्सा इससे आगे नहीं सोचने दे रहा था कि अब लौट कर घर नहीं जाना है, कभी भी नहीं। चाहे होटल में कप प्लेट ही क्यों न धोना पड़े पर लौट कर घर नहीं जाऊंगा। सीटें खाली थीं पर बैठने का मन नहीं हो रहा था। अगल बगल के लोगों को देख कर मुझे लग रहा था कि लोग मुझे देख रहे हैं। लोग अगर पूछेंगे तो क्या कहूंगा। हो सकता है लोग पूछें कि तुम्हारा सामान कहां है। मैंने मन ही मन बहाने ढूंढे। कह दूंगा, मेरे घर वाले सब पहले ही बम्बई जा चुके हैं। सामान उन्हीं के साथ चला गया। एकाध आदमी ने यह पूछा भी और मैंने मन ही मन तैयार बहाना दोहरा दिया। उसने कुछ और कुरेदने की कोशिश की तो मैं दरवाजे से बाहर देखने लगा। कुछ देर बाद अचानक मुझे ख्याल आया कि घर में क्या बात हो रही होगी? फिर लगा अभी तो किसी को इस बात का ख्याल भी नहीं होगा कि मैं शहर छोड़ कर चला गया हूं। सारा हंगामा तो तब शुरू होगा जब मैं रात को नहीं लौटूंगा। हो सकता है कल घर वाले पुलिस में रिपोर्ट करें। करें तो करें, मैंने सिर को झटका देकर विचारों को परे धकेलने की कोशिश की। एक बार फिर मन ही मन दोहराया कि चाहे कुछ हो जाय घर नहीं लौटना है। कुछ लोग अभी भी मुझे देख रहे थे या हो सकता है, मुझे ही ऐसा लगा हो। चोर की दाढ़ी में तिनका।

मैं बाथरूम में घुस गया। मुंह धोया और बेसिन पर लगे आईने में अपने को देखा। मैं बहुत दुबला था। चेहरा भी अजीब लम्बोतरा सा लगा। नाक मोटी और दांत भी ऊबड़ खाबड़। लगा कि अगर थोड़ा चेहरा मोहरा अच्छा होता तो बम्बई फिल्म इंडस्ट्री में भी कोशिश की जा सकती थी। तत्काल ही दूसरे विचार ने जगह बनायी... क्या यह जरूरी है कि हीरो ही बना जाय। कई साइड रोल होते हैं उसके लिए कोशिश की जा सकती है। इस बीच मैंने कई कोणों से अपना चेहरा देखने की कोशिश की, मन ने कहा नहीं इतना बुरा भी नहीं है... कि कोई काम न मिल सके। कुछ कुछ लिखना भी शुरू हो गया था... सोचा कुछ नहीं तो डायलाग लिखने का काम तो किया ही जा सकता है और गीत भी... गीत की कुछ पंक्तियां मन ही मन गुनगुनायीं... पर फिल्म इंडस्ट्री कहां है, मुझे कोई पता नहीं था। किससे मिलना पड़ता है, किससे बात करनी पड़ती है, कुछ भी पता नहीं था। मन को फिर एक झटका दिया... अब वहीं जो होगा देखा जायेगा। किसी न किसी से पता चल ही जायेगा। आईने के सामने खड़े खड़े थकान होने लगी... बाहर निकल आया...। रात हो गयी... मन में एक बार फिर घबराहट ने सिर उठाया... जब तक काम नहीं मिलेगा क्या होगा? कहां रहूंगा... कहां सोऊंगा... जेब में अस्सी रुपये थे... बम्बई के जेबकतरों के किस्से बहुत सुन चुका था। एक बार फिर बाथरूम में घुसा और पतलून के बेल्ट वाले हिस्से में लगे अस्तर में चाकू से एक छेद बनाया और रुपयों को मोड़ कर उसके भीतर घुसा दिया। अब कोई डर नहीं था। इस जगह से कोई पैसे नहीं चुरा सकता था। रात बढ़ी जा रही थी। दिमाग सोच सोच कर थक रहा था पर आंखों में नींद नहीं थी... ट्रेन सुबह सुबह बम्बई पहुंचती थी...। काम ढूंढने के लिए पूरा दिन मिलेगा। किसी से समय पूछा। रात बारह बज चुका था...। लगा घर में फिकर होनी शुरू हो गयी होगी... पता लग गया होगा कि मैं घर छोड़ कर भाग चुका हूं...। खिड़की से सिर टिकाये रात भर मैं इसी तरह के उटपटांग विचारों में खोया रहा...।

जारी...

www.tadbhav.com